पूज्य दादी-माँ

तथा

पिताजी और माताजी की पुण्यस्मृति में,

जिन्होंने

सेवा-भक्ति के संस्कारों का सिंचन कर

मुझे गांधीजी तथा देश के दूसरे नेताओं की

सेवा तथा समागम का सौभाग्य प्रदान किया ।

बालक

शान्तिकुमार

निवेदन

सौभाग्यवश मैं बम्बई के प्रसिद्ध मोरारजी घराने में जन्मा और बुजुर्गों के पुण्य प्रताप से छोटी उमर में ही गांधीजी के सम्पर्क में आया। सन् १९२९ में मेरे पिताजी का स्वर्गवास हुआ। उसके बाद मैं गांधीजी के अधिक निकट आया। अपने कारावास या बीमारियों के बाद गांधीजी एकाधिक बार जुहू के समुद्र-तट पर मेरी दादी-माँ के अतिथि के रूप में हमारे घर आकर रहे। इस कारण उनके साथ के मेरे सम्बन्धों को कुछ विशेष ख्याति प्राप्त हुई।

चूंकि यह सारा सम्बन्ध न्यूनाधिक अंश में निजी ढंग का था इसलिए गांधीजी के स्वर्गवास के बाद जब मित्रों, संस्थाओं अथवा आकाशवाणीवालों और ऐसे ही अन्य लोगों की ओर से मुझे गांधीजी के बारे में कुछ कहने या लिखने के अवसर मिलते गए तो मैं परेशानी में पड़कर इनकार करता रहा।

इस देश के सभी लोगों ने गांधीजी को 'राष्ट्र-पिता' माना है। आज हिन्दुस्तान में ही नहीं बल्कि दुनिया के सभी देशों में ऐसे हजारों-लाखों स्त्री-पुरुष होंगे जो गांधीजी के सम्पर्क में आ चुके हैं। हजारों परिवारों में गांधीजी का नाम घर के बड़े-बूढ़ों की जगह पा गया है। ऐसे अनगिनत लोगों में से ही एक मैं हूँ।

गांधीजी के साथ के अपने लम्बे समागम के दिनों में व्यक्तिगत अथवा ऐतिहासिक महत्त्व की बातों या सम्बन्धों के कोई टिप्पण डायरी अथवा ऐसी कोई चीज मैंने कभी रखी नहीं। लिखने-बोलने

किन्तु दैव की इच्छा कुछ और ही थी इसलिए ये संस्मरण इस रूप में लिखे गये और प्रकाशित हुए। यह सब मेरी कल्पना के बाहर की बात थी।

× × ×

मूल गुजराती पुस्तक का यह हिन्दी अनुवाद श्री काशिनाथजी त्रिवेदी ने बड़े चाव से और भक्तिभावपूर्वक कर दिया और सर्व सेवा-संघ ने उसे प्रकाशित किया इसलिए दोनों का मैं ऋणी हूँ।

अपनी मृत्यु के कुछ समय पूर्व पं. जवाहरलालजी नेहरू ने मूल गुजराती पुस्तक बहन मनुबहन गांधी के यहाँ देखी। उसके कुछ अंश उनसे सुने और इच्छा प्रदर्शित की कि इसका हिन्दी अनुवाद शीघ्र प्रकाशित होना चाहिए। इस कारण भी मेरे लिए इस हिन्दी अनुवाद का मूल्य बढ़ गया है। काश आज वे हमारे बीच होते!

जनवरी ८,६६
[illegible]

शान्तिकुमार न. मोरारजी

यह सब मुझसे लिखवा लिया और उस रूप में लिखकर और व्यवस्थित करके छपाया है। सामग्री को सहेजने में और मेरे मनोभावों को तटस्थतापूर्वक पकड़कर उन्हें शब्दबद्ध करने में उन्होंने पूरी सावधानी बरती है। संस्मरणों की सामग्री अधिकांश में मेरी है पर लेखन-शैली भाषा और रचना सब उनकी है। इस सबके लिए मैं उनका ऋणी हूँ। इसी तरह मैं श्री मनुबहन गांधी का भी ऋणी हूँ जिनकी प्रेरणा से मूलतः इन संस्मरणों का श्रीगणेश हुआ था।

गांधीजी के अलावा मैं देश के अन्य नेताओं के भी सम्पर्क और समागम में आया। इस स्मृति-ग्रन्थ के अन्त में उनमें से कुछ की संक्षिप्त स्मृतियाँ भी एक स्वतन्त्र प्रकरण के रूप में सम्मिलित करने की धृष्टता मैंने की है। उनमें जीवित नेताओं में से किसीकी स्मृतियों का समावेश नहीं किया है।

पुस्तक के प्रकरणों के आरम्भ में और अन्यत्र भी जो चित्र दिये हैं वे गुरुकामी हमारी गांधीधाम की बस्ती के 'जनभवन' में बनाये हुए चित्र, समाधियों आदि के हैं। इसी तरह अपनी स्मृतियों से सम्बन्ध रखनेवाले कुछ प्रसंगों के फोटो भी मैंने इस पुस्तक में देने का साहस किया है यह समझकर कि वे अपनी जगह इसी रूप में उपयुक्त ही माने जायेंगे।

इन संस्मरणों को इस तरह लिखकर अथवा लिखवाकर प्रकाशित करने की कल्पना कभी मेरे मन में आयी ही नहीं थी। बहुत हुआ तो कभी मन में यह विचार उठा कि गांधीजी के सम्पर्क के पावन संस्मरण भविष्य में कदाचित् किसी संशोधक अथवा इतिहासकार के लिए उपयोगी सिद्ध हों। इस दृष्टि से उन्हें अंकित करके किसी गांधी-संस्था को अथवा संग्रहालय को भेंट दिया जाय।

किन्तु दैव की इच्छा कुछ और ही थी इसलिए ये संस्मरण इस रूप में लिखे गये और प्रकाशित हुए। यह सब मेरी कल्पना के बाहर की बात थी।

× × ×

मूल गुजराती पुस्तक का यह हिन्दी अनुवाद श्री काशिनाथजी त्रिवेदी ने बड़े चाव से और भक्तिभावपूर्वक कर दिया और सर्व सेवा-संघ ने उसे प्रकाशित किया इसलिए दोनों का मैं ऋणी हूँ।

अपनी मृत्यु से कुछ समय पूर्व पं. जवाहरलालजी नेहरू ने मूल गुजराती पुस्तक बहन मनुबहन गांधी के यहाँ देखी। उसके कुछ अंश उनसे सुने और इच्छा प्रदर्शित की कि इसका हिन्दी अनुवाद शीघ्र प्रकाशित होना चाहिए। इस कारण भी मेरे लिए इस हिन्दी अनुवाद का मूल्य बढ़ गया है। काश आज वे हमारे बीच होते!

जनमंगल [illegible]
जन्माष्टमी [illegible]

शान्तिकुमार न० मोरारजी

प्रस्तावना

ये संस्मरण जिन परिस्थितियों में लिखे गये उनकी चर्चा भाई शान्तिकुमारजी ने अपने निवेदन में की है। तदनुसार उनके साथ बैठकर की गयी हमारी मिली-जुली स्मृति-चर्चा के नोटों के आधार पर उनसे सम्बन्ध रखनेवाली सामग्री को छाँटकर मैंने ये संस्मरण लिखे हैं और हमने एकाधिक बार साथ बैठकर इन्हें व्यवस्थित किया है। वस्तु उनकी, लेखन सारा मेरा। फिर भी मैंने इस बात की सावधानी रखी है कि जिससे उनके संस्मरण को ही तटस्थ भाव से यथावत् प्रस्तुत कर सकूँ।

उनके पिता स्वर्गीय सेठ नरोत्तम मोरारजी का साथ गांधीजी का वर्षों तक गाढ़ सम्बन्ध बना रहा। भाई शान्तिकुमार भी छोटी उमर में ही गांधीजी के विशेष प्रीतिपात्र बन गये थे। इसका पता हमें महादेवभाई द्वारा अंकित गांधीजी के नीचे लिखे शब्दों से चलता है :

> "यह अभी नवयुवक है, पर इसकी आत्मा महान् है। यह स्वयं व्यापारी-श्रेणी है और व्यापारी ही रहनेवाला है। मेरे कहने का मतलब यह नहीं कि यह कोई असाधारण बड़े-से-बड़ा गुण है। इसमें दया है, उदारता है, नम्रता है, ईश्वर-परायणता है, सत्य है। जैसा नाम है, वैसे ही गुण हैं। शान्ति की मूर्ति है। मुझे यह देखकर बहुत आनन्द होता है कि करोड़पति के घर ऐसा रत्न है।
>
> "बापू के शब्दों में अंकित इस नवयुवक को पहचानते हो ?"
>
> सोदपुर २१-५-१९२[illegible] म० ह० दे०

सन् १९०८ में नरोत्तम सेठ की मृत्यु करुण परिस्थिति में हुई। उसके बाद गांधीजी ने भाई शान्तिकुमार को अपनाया और

भाई महादेव मथुरादास देसाई की कोटि के पुरुषों में उनकी गिनती थी। रोम-रोम का यह सम्बन्ध अन्तिम दिन तक ज्यों का त्यों रहा।

यह निकट सम्बन्ध लगभग तीन दशक तक चला। इस बीच भाई शान्तिकुमार जिन अनगिनत सार्वजनिक और व्यक्तिगत अवसरों प्रसंगों और घटनाओं के साक्षी अथवा भागी रहे उनसे सम्बन्ध रखनेवाले इन संस्मरणों में गांधीजी का व्यक्तित्व और चरित्र विविध रूपों में प्रकट होता पाया जाता है। कुछ प्रसंग और चित्र तो ऐसे हैं जिन्हें अकेले वे ही दे सकते थे अन्यथा वे उनके साथ ही काल के उदर में समा जाते। इस पुस्तक के निमित्त से वे सब जनता के लिए सुलभ हुए हैं। इन संस्मरणों से हमें इस बात का भी पता चलता है कि गांधीजी के बारे में प्रचलित कुछ रूढ़ मान्यताएँ जैसे वे यंत्र बिजली अथवा बड़े पैमाने पर चलनेवाले उद्योगों के बिलकुल विरुद्ध थे किस हद तक और किस अर्थ में सच्ची थीं।

इस प्रकार इन संस्मरणों में इस देश के गांधी-युग का कुछ इतिहास अनायास ही समा गया है। बिना किसी नोट या डायरी आदि की मदद के केवल अपनी याद के सहारे उन्होंने अपने इतने विविध संस्मरण देश को दिये यह उनके लिए बड़े गौरव की बात है।

जनता को अपनी यह देन देकर भाई शान्तिकुमार ने राष्ट्र पिता का बहुत ही उचित तर्पण किया है और देश की मूल्यवान् सेवा की है इसमें सन्देह नहीं। मुझे विश्वास है कि जनता इस स्मृति-ग्रन्थ का स्वागत उतनी ही उमंग से करेगी।

स्वामी आनन्द

अनुक्रम

●

चित्र-सूची

गाधीजी
के
सस्मरण
•

सबसे अच्छा काम करनेवाली आती और देश-दुनियाभर की बातें रस ले-लेकर सुनाती। इसमें गांधीजी की बातें भी अचूक रूप से हुआ करतीं। इस तरह मेरे कानों पर गांधीजी के नाम और काम की बातें पड़ने लगीं और मुझमें उनकी बातें सुनने की जिज्ञासा जागी।

इसके बाद ९ जनवरी १९१५ के दिन जब गांधीजी दक्षिण अफ्रीका से बम्बई आये, उस समय उनको अपनी को कहाँ ठहराना ठीक होगा, इसकी चर्चा करते हुए उस जमाने की बम्बई के बेताज के बादशाह सर फीरोजशाह मेहता ने कहा, "हम उन्हें भी [illegible] के महल में ठहरायें।" लेकिन पूछताछ के लिए आवश्यक समय था नहीं, इसलिए आखिर शान्ति-भवन में ठहराने का निश्चय हुआ। तदनुसार गांधीजी हमारे घर पधारे। कुछ घण्टे रहने के बाद वे स्व. रेवाशंकर जगजीवन के घर चले गये, वहाँ वे हमेशा ठहरा करते थे।

उन दिनों गांधीजी अनाज भी दूध नहीं खाते थे। मूँगफली और जैतून का तेल (ओलिव ऑयल) आदि चीजें खाया करते थे। उनके खान-पान आदि से सम्बन्ध रखनेवाली सारी बातें समझाने के लिए गांधीजी के बेटे मेरे स्वर्गीय हरिलालभाई हमारे घर आये थे।

जिस दिन गांधीजी आये उस दिन शनिवार था। जब मैं पाठशाला से घर पहुँचा तब गांधीजी विदा हो रहे थे। पिताजी मुझे सीधे ही गांधीजी के पैर छुआने के लिए ले गये।

"पाठशाला के ये कपड़े मैले हो चुके हैं। इन्हें बदलकर आऊँ तो?"

"गांधीजी ऐसी बातों का खयाल नहीं करते। तू तो इसी तरह चला चल।"

मैं गया और मैंने गांधीजी के पैर छुए। मेरी उम्र १३ की थी।

गांधीजी के

४ इसके बाद की एक घटना गांधीजी के ज्येष्ठ पुत्र स्वर्गीय हरिलालभाई सम्बन्धी है। वे उन दिनों कलकत्ते के हमारे दफ्तर में काम करते थे। वहाँ उन्होंने पैसों के मामले में कुछ गड़बड़ की थी। इस सिलसिले में पिताजी का गांधीजी के साथ थोड़ा पत्र व्यवहार हुआ था। पत्र लिखने के बाद पता कैसे लिखना इसके बारे में पिताजी ने पास ही बैठे अपने मित्र श्री कन्हैयालाल (श्री व रणछोड़भाई उदयराम के पुत्र) से पूछा। उन्होंने सुझाया

"लिखिये 'महात्मा' मोहनदास करमचन्द गांधी।

हरिलालभाई के इस मामले के सिलसिले में उन्हीं दिनों गांधीजी एक बार और हमारे घर पिताजी से मिलने आये थे। उन्होंने पिताजी से कहा था कि वे हरिलाल के विरुद्ध कानूनी तौर पर जो कुछ भी करना उचित हो सो करें। किन्तु पिताजी ने किसी भी तरह की कोई कार्रवाई न करने की बात कही।

यह वह समय था जब गांधीजी शरीर पर अँगरखा पहनते थे और सिर पर काठियावाड़ी फेंटा ही बाँधते थे।

५ मेरे पिताजी राजनीतिक आन्दोलनों में कहीं कोई खास नेतृत्व अथवा अगुवानीवाला काम नहीं करते थे। लेकिन सार्वजनिक क्षेत्र के अनेक देश-नेताओं के साथ उनका बहुत घना सम्बन्ध था। इस प्रकार के लोग जब कभी बम्बई आते तब अक्सर हमारे ही घर ठहरा करते। पिताजी उनके कामों के लिए बिना अपना नाम दिये हमेशा ही उनकी यथासम्भव मदद किया करते थे। स्व. गोपाल कृष्ण गोखले के साथ मेरे पिताजी की गाढ़ी मित्रता थी। जब कभी गोखलेजी बम्बई आते तो वे हमारे ही घर ठहरते। गांधीजी के लिए उनके मन में बहुत ऊँचा विचार था और गांधीजी भी

उन्हें गुरु-तुल्य मानते थे। गोखलेजी ने शुरू से ही गांधीजी को सूचित कर रखा था कि जब कभी उन्हें अपने काम-काज के लिए किसी भी तरह की सहायता की आवश्यकता हो तो वे मेरे पिताजी से मिल लिया करें। बाद के वर्षों का ऐसा एक प्रसंग मुझे याद है। जिन दिनों गांधीजी ने साबरमती आश्रम की स्थापना की उन्हीं दिनों वे एक बार आर्थिक सहायता के लिए पिताजी के पास आये थे और पिताजी ने अपना नाम प्रकट न करने की शर्त पर उन्हें रकम दी थी।

६ सन् १९१५ के अन्त में बम्बई में लॉर्ड सिन्हा के सभापतित्व में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ था। मैंने गांधीजी को दूसरी बार वहीं देखा। उस अधिवेशन में जिन्नासाहब दक्षिण अफ्रीका की स्थिति पर बोले थे श्रीमती सरोजिनी नायडू ने भी अपने कोकिलकण्ठ से सुन्दर भाषण किया था। उसी समय इन दोनों को मैंने पहले-पहल सुना था।

७ सन् १९१६ में काशी के हिन्दू विश्वविद्यालय का शिलान्यास वाइसराय लॉर्ड हार्डिंग के हाथों मालवीयजी श्रीमती एनी बेसेन्ट और अनेक राजा-महाराजाओं की उपस्थिति में हुआ था। मालवीय जी का आमन्त्रण पाकर गांधीजी भी वहाँ पहुँचे थे। उस सभा में गांधीजी ने एक अग्नि बाण जैसा भाषण किया। उस समय मेरी उम्र १२ साल की थी। किन्तु वह भाषण मुझे इतना पसन्द आया था कि मैंने उसे अखबार से काट लिया और मैं उसे बार-बार निकाल कर पढ़ता रहा। बाद में यह भाषण गांधीजी के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण [illegible] माना गया।

गांधीजी के

८ सन् १९१६ में लखनऊ में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। उन दिनों स्वर्गीय रणछोड़राम बाबाभाई मेरे शिक्षक और कम्पैनियन थे। मैंने उनसे पूछा था

हिन्दुस्तान का बड़े-से-बड़ा नेता कौन बनेगा ?

'गांधीजी।

९ सन् १९१९ में मेरे पिताजी ने दूसरे तीन भागीदारों के साथ मिलकर ग्वालियर के महाराजा सिन्धिया से 'लॉयल्टी' नामक स्टीमर खरीदा। इस स्टीमर में उसी साल मैं पिताजी के साथ पहले-पहल विलायत पढ़ने गया। हमारे बम्बई से रवाना होने के दिन गांधीजी भी जमनादास द्वारकादास के साथ अचानक ही हमारे घर आये। उन दिनों उन्होंने फेंटा और अँगरखा पहनना छोड़ दिया था और कुरता तथा खादी की टोपी पहनने लगे थे।

जिस समय गांधीजी आये पिताजी भोजन कर रहे थे। किन्तु गांधीजी तो बिना किसी संकोच के सीधे हमारे भोजनालय में पहुँच गये। मैंने उनके पैर छुए। मुझे आशीर्वाद देते हुए वे बोले

"तू बड़ा वकील-बैरिस्टर बनकर लौटना।

उस समय मेरी उम्र १७ साल की थी। मैं गांधीजी की लिखी 'हिन्द स्वराज' पुस्तक और उनकी दूसरी कई रचनाएँ पढ़ चुका था जिनमें उन्होंने वकालत के धन्धे की कड़ी टीका (=आलोचना) की थी। मेरा मन हो आया कि मैं उनसे पूछूँ कि 'आप तो वकालत के धन्धे के विरुद्ध हैं। फिर भी आपने मुझे ऐसा आशीर्वाद क्यों दिया ?

लेकिन तब ऐसी कोई बात पूछने की हिम्मत नहीं हुई।

वह ६ अप्रैल का दिन था। रौलट-कानून के विरुद्ध गांधीजी ने सविनय अवज्ञा का जो आन्दोलन उठाया था सारे देश में और बम्बई में समुद्र-किनारे चौपाटी पर उसका श्रीगणेश उसी ही दिन

होनेवाला था। इतने बड़े आन्दोलन की जिम्मेदारी सिर पर होते हुए भी भारी व्यस्तता के बीच समय निकालकर गांधीजी हमारे घर आ पहुँचे थे!

१० हमारा स्टीमर अभी विलायत के रास्ते पर ही था कि इतने में बम्बई के मुख्य न्यायाधीश की पत्नी लेडी बेकिन्सम के नाम स्टीमर पर पिताजी का या किसी और का तार पहुँचा 'हिन्दुस्तान में देशव्यापी आन्दोलन भड़क उठा है, अमृतसर के जलियाँवाला बाग में कत्लेआम हुआ है, गांधी पकड़े गये हैं और पंजाब में फौजी कानून का एलान हो चुका है।'

विलायत पहुँचने पर मैंने देखा कि वहाँ के समाचार-पत्रों में हिन्दुस्तान के बारे में शायद ही कभी कोई खबर छपती थी। जब बम्बई के अखबार पहुँचे तभी मुझे पहले-पहल ब्योरेवार खबरें जानने को मिलीं।

११ विलायत में हैरो के प्रसिद्ध विद्यालय के एक सेवा-निवृत्त शिक्षक के घर मैं खानगी विद्यार्थी के रूप में रहने लगा। मेरे साथ भारत का एक और राजकुमार भी था। एक दिन मेरे शिक्षक की पत्नी ने श्रीमती बेसेण्ट की बात बतायी

'यह स्त्री हिन्दुस्तान में राजनीतिक आन्दोलन चला रही है और हिन्दुस्तानियों को हमारे साम्राज्य के विरुद्ध उभारती रहती है। इसके बाप इसी हैरो में थे। उन दिनों यह लड़की चर्च में जाकर खाली कुर्सियों के सामने खड़ी रहती थी और भाषण करने का अभ्यास करती थी। इस तरह उसने भाषण करना सीखा।

'उनके साथ तो हमारा गहरा सम्बन्ध है। अब भी बम्बई आती हैं, हमारे ही घर ठहरती हैं।'

सुनकर शिक्षक की पत्नी ने मुँह बनाया और उनका मन खट्टा हो गया। मैंने मामले में भी हँसने के विचार से कहा

'गांधीजी के साथ भी हमारा ऐसा ही बना सम्बन्ध है।'

एक दिन मेरे शिक्षक की इस पत्नी ने मुझे आदेश दिया कि मैं अपने कमरे में श्रीमती बेसेण्ट और गांधीजी के फोटो न रखूँ।

मैं कुछ बोला नहीं। लेकिन उसी दिन बम्बई पत्र लिखकर दोनों के बड़े आकार के फोटो मँगवाये और पीछे ही वे आये मैंने उन्हें अपने कमरे में सजाया।

शिक्षक-पत्नी लाल-पीली हो उठी। उन्होंने अपने पति से इसकी शिकायत की। लेकिन चूँकि मैं उन लोगों को अपने कमरे का किराया चुकाता था इसलिए पति ने पत्नी की बात मानी नहीं।

हिन्दुस्तान के राजनीतिक प्रश्नों नेताओं और विचारों के सिलसिले में इस महिला के साथ समय-समय पर मेरी नोक-झोंक होती रहती थी। इस कारण वह मुझे परेशान भी करती थी। मैं शाकाहारी ठहरा इसलिए खाने-पीने के मामले में भी वह मुझे सताया करती थी। उन्हीं दिनों वहाँ रेलवालों की एक बड़ी हड़ताल हुई। हड़ताल के नेता थे—मि. टॉमस (जो बाद में मजदूर पक्ष के शासन-काल में मंत्री बने थे)। खाने-पीने की चीजें मिलती नहीं थीं। कण्ट्रोल के कायदे भी बहुत कड़े थे। इस बहाने भी शिक्षक-पत्नी ने मुझे एक-दो दिन भूखा रखा था। किन्तु सब-कुछ सहन करके भी मैं शाकाहारी ही बना रहा।

१२ जिन दिनों मैं विलायत में था मैंने वहाँ गांधीजी के चित्रवाला एक बैजबहर तैयार किया था। उस पर सूत्र-वाक्य के रूप में Truth Conquers All शब्द लिखवाकर अन्त में

मैंने प्रश्नचिह्न बनवाया था। उन दिनों यह कैलेण्डर बच्चों के लिए विनोद की सामग्री बना और पिताजी ने इसकी एक प्रति पूज्य बापूजी को भी दी।

२१ अप्रैल सन् १९२ के अन्तिम सप्ताह में गांधीजी पूना के निकट सिंहगढ़ के किलेवाले हमारे बंगले में कुछ दिन आकर रहे थे। उन दिनों मैं विलायत में था। लेकिन स्वर्गीय महादेव भाई, डॉ. जीवराज, स्वामी आनन्द और बालकोबा भावे आदि गांधीजी के साथ थे।

यह किला उत्तम जलवायु के लिए प्रसिद्ध है और इसके देवकुण्ड का पानी उत्तम माना जाता है। लेकिन किला अपने-आपमें बिलकुल बीहड़ हालत में है। मुश्किल से ८१ बंगले होंगे। उन दिनों यहाँ कोई चीज-वस्तु मिलती न थी। सब-कुछ अठारह मील दूर पूना से मँगवाना पड़ता था। यहीं स्वर्गीय दाजी आबाजी खरे के बंगले में लोकमान्य तिलक भी कभी-कभी आकर रहते थे। जब गांधीजी सिंहगढ़ पहुँचे तो स्वामी आनन्द के आग्रह से तिलक महाराज भी गांधीजी के समागम की दृष्टि से खास तौर प सिंहगढ़ आये और रहे थे। दुर्भाग्यवश अहमदाबाद में मिल मजदूरों की हड़ताल की सम्भावना की खबर मिलने से इन दोनों महानुभावों का सहवास अपेक्षाकृत कम रह पाया। कोई पाँच-छह दिन के बाद ही गांधीजी को वापस अहमदाबाद जाना पड़ा। वे १९२ के अप्रैल महीने की २९ तारीख से लेकर ४थी या ५वीं मई तक सिंहगढ़ रहे थे। इसके कुछ ही महीनों बाद १ अगस्त १९२ के दिन बम्बई में लोकमान्य का स्वर्गवास हुआ।

उसी साल मेरी माताजी का भी अवसान हुआ। इस कारण मैं विलायत छोड़कर वापस हिन्दुस्तान आया। आने के बाद तुरन्त

मैं गांधीजी के दर्शनों के लिए मणि भुवन पहुँचा। किन्तु वे सोये हुए थे इसलिए दूर ही से दर्शन करके लौट आया।

●

१४ चूँकि मणि-भुवन में मैं गांधीजी से मिल नहीं पाया था इसलिए कुछ दिनों के बाद मैं साबरमती पहुँचा। सेठ अम्बालाल साराभाई के घर ठहरा। वहाँ से साबरमती आश्रम गया। पूरा दिन गांधीजी के पास बिताया। उनके साथ बैठकर भोजन किया। उस समय आश्रम में एक ही बड़ा सामूहिक भोजनालय सोमनाथ-छात्रालय के पीछे चलता था। जहाँ तक मेरा खयाल है, उन दिनों भोजनालय के नीचेवाले तलघर में पुस्तकालय था। जीमनेवाले जीम चुकने पर थाली में हाथ धोते और फिर थाली उठाकर उसे बाहर मांजने ले जाते। हम लोग थाली में हाथ नहीं धोते इसलिए मैं बाहर गया और हाथ-मुँह धोकर वापस आने के बाद अपनी थाली मांजने के लिए उठाने पहुँचा किन्तु आकर देखा तो पता चला कि गांधीजी ने मेरी थाली उठवाकर किसीको मांजने के लिए सौंप दी थी। मैंने कहा

"हम लोग थाली में हाथ नहीं धोते इसलिए हाथ-मुँह धोकर मैं थाली मलने आ ही रहा था।"

बापू "कोई बात नहीं।"

मैं बहुत लज्जित हुआ।

१ जब कभी गांधीजी बम्बई आते तो जितने भी दिन वे बम्बई में ठहरते उतने दिन मैं रोज शाम मणि भुवन जाया करता। उन दिनों शाम की प्रार्थना मणि भुवन की छत पर हुआ करती थी। एक दिन मेरा सिर दुख रहा था। मैंने घर फोन किया "देर से

पहुँचूंगा। भोजन नहीं करूँगा। उन दिनों श्री रेवाशंकरभाई का छोटा लड़का बीमार था। इसलिए वे बोरीवली रहते थे। गांधीजी ने मुझसे कहा

'मुझे रेवाशंकरभाई से मिलने बोरीवली जाना है। तुम मुझे ले चलोगे ?

मैंने 'हाँ' कहा।

दक्षिण अफ्रीका के भारतीयों का एक शिष्ट-मण्डल मिलने आया था। उसके साथ चल रही बातचीत को रोककर शाम की प्रार्थना के बाद जाने का निश्चय हुआ था। लेकिन प्रार्थना के बाद भी लोगों की भीड़ छंट नहीं रही थी। बड़ी मुश्किल से रात ९ बजे हम अपनी 'हिन्दुस्तान ऐरो' मोटर में रवाना हुए। रास्ते में गांधीजी ने मुझसे पूछा

'शाम को तुम क्या खाते हो ? तुम्हें क्या अच्छा लगता है ?

'पूरी आदि तली हुई चीजें अच्छी नहीं लगतीं। सादी रसोई भाती है।

बाद में पण्ढरपुर के मन्दिर के विठोबा की मूर्ति के बारे में चर्चा चली। पहले एक बार गांधीजी ने महादेवभाई से पूछा था

'पण्ढरपुर के विठोबा की मूर्ति अपने दोनों हाथ कमर पर रखकर खड़ी है इसका अर्थ क्या हो सकता है ?

महादेवभाई ने कहा था 'पता लगाकर आपको बताऊँगा।

मोटर में महादेवभाई ने कहा

'काका (कालेलकर) कहते हैं कि दोनों हाथ कमर पर रखकर मूर्ति को खड़ा जो रखा है सो पुरुषातन* का सूचक है।

---

* इस विषय में काकासाहब कालेलकर, विनोबाजी तथा प्यारेलालजी के स्पष्टीकरण परिशिष्ट (पृष्ठ २६६) में देखिये।

रेवाशंकरभाई : "आपके ऐसा लिख देने से मेरी स्थिति कुछ नाजुक हो गयी है!"

बाद में मैंने सुना था कि वह पुस्तक गांधीजी की प्रस्तावना के बिना ही छपी थी!

लौटते समय तक आधी रात हो चुकी थी। उस दिन गांधीजी का शाम का टहलना हो नहीं पाया था। इसलिए जैसे ही वर्ली के समुद्र-तट पर पहुँचे मोटर खड़ी करवाकर गांधीजी नीचे उतरे और हाजीपत्नी के नाके तक पैदल चले। इस तरह आधी रात के बाद भी वे टहल लिये!

कोई डेढ़-दो बजे के लगभग हम लोग मणि-भुवन वापस पहुँचे होंगे। लेकिन उसके बाद भी गांधीजी सोये नहीं। दक्षिण अफ्रीका के शिष्ट-मण्डल के सदस्य उस समय भी जाग ही रहे थे। गांधीजी उनके साथ बैठे और अधूरी चर्चा पूरी करने के बाद ही उठे!

उन लोगों को सवेरे ही छूटनेवाले स्टीमर में वापस दक्षिण अफ्रीका के लिए रवाना होना था।

लगभग तीन बजे मुश्किल से पौन घण्टा सो पाये होंगे। उन दिनों सवेरे की प्रार्थना चार बजे हुआ करती थी। मैंने अक्सर देखा था कि उस जमाने में गांधीजी रोज के चौबीस घण्टों में से २०-२१ घण्टे काम करते रहते थे।

१६ लोकी बुआ साबरमती आश्रम के श्री लक्ष्मीदास आसर की काकी होती थी। उनकी अपनी कोई सन्तान नहीं थी इसलिए उन्होंने लक्ष्मीदासभाई की एक लड़की को अपने पास रखकर उसका पालन पोषण किया था। स्वर्गीय जमनालालजी बजाज उसका विवाह जाति के बाहर कराना चाहते थे। गांधीजी ने भी पत्र-व्यवहार किया था। लोकी बुआ बहुत चतुर और बड़ी समझदार थी। सुन्दर उत्तर लिखा

१८ बम्बई की गिरगांव, खेतवाड़ी और कामाठीपुरावाली बस्तियों में गोवा तथा दक्षिण कोंकण की नायकिनें पीढ़ियों से आबाद हैं। वे 'कोंकणवालियां' कहलाती हैं। ये ऊंचे स्तर की किन्तु दूसरा धन्धा करनेवाली स्त्रियां विनय-विवेक में खानदानी घरों की बहू-बेटियों को भी मात करती हैं। इन नायकिनों की एक छोटी मण्डली एक बार गांधीजी से मिलने मणि-भुवन आयी। गांधीजी ने अपनी बैठकवाले दीवानखाने में उनका स्वागत किया। उनकी मुखिया बहन को सम्मान के साथ अपनी बैठने की गादी पर अपने पास बैठाकर उन्होंने बड़े ही सद्भाव के साथ सब बहनों से बातें की और उन्हें समझाया कि वे अपना अनीतिपूर्ण धन्धा छोड़ दें। मुझे कुछ धुंधली सी याद है कि इस घटना के सम्बन्ध में गांधीजी ने उन दिनों 'नवजीवन' अथवा 'यंग इण्डिया' में एक टिप्पणी लिखी थी।

१९ जिन दिनों गांधीजी मणि-भुवन में ठहरते थे उन दिनों जब भी कभी उन्हें बाहर दौरे पर जाना होता था तब प्रायः मैं ही उन्हें स्टेशन पर पहुंचाया करता था। स्टेशन की ओर जाते समय रास्ते में किसीसे मिलना-भेंटना होता तो हमेशा मुझसे उतने समय की गुंजाइश रखने को कह दिया करते थे। बम्बई के प्रसिद्ध शेयर दलाल स्व. मनसुखलाल छगनलाल की मृत्यु के बाद जब गांधीजी पहली बार बम्बई आये तो उन्होंने सदा की तरह मुझसे कहा "उनकी पत्नी से मिलकर ही स्टेशन जाना है, इतना वक्त रखना।"

मैं जानता नहीं था कि ये मनसुखलाल कौन-से हैं उनका घर कहां है और कितनी दूर है। मैं तो उन्हें शेयर-बाजार के उनके चालू छोटे नाम से ही पहचानता था। इसलिए मैं थोड़े सोच में पड़ा। गांधीजी मेरी परेशानी को ताड़ गये। बोले

'वो बड़े शेयर-दलाल थे।

२० जलियाँवाला बाग के कत्ले-आम और पंजाब के फौजी शासन के बाद के पहले वाइसराय लॉर्ड रीडिंग रहे। वे जिस स्टीमर में आये उसीमें मेरे पिताजी भी थे। उन्होंने पिताजी पर कुछ ऐसी मोहिनी डाली मानो वे हिन्दुस्तान का इतना हित करेंगे जितना इससे पहले किसीने न किया हो। पिताजी ने स्टीमर पर से ही मुझे तार किया

'गांधीजी से कहना नये आनेवाले वाइसराय बहुत अच्छे आदमी हैं। हिन्दुस्तान के लिए यथासम्भव सब कुछ करना चाहते हैं।

मुझे तो कोई आशा थी नहीं किन्तु पिताजी की खातिर मैंने गांधीजी को यह बात कह दी थी।

२१ गांधीजी की अंग्रेजी इतनी सादी संक्षिप्त और जोरदार होती थी कि उनके कट्टर विरोधी अंग्रेज भी उनके 'यंग इण्डिया' को बड़े चाव के साथ पढ़ा करते थे और हर हफ्ते उसकी बाट जोहा करते थे। खुद लॉर्ड रीडिंग इस खयाल से कि कहीं उनके कार्यालयवाली प्रति उन्हें देर से न मिले अपने लिए अलग से एक अतिरिक्त प्रति मँगवाते थे। बाद में जब गांधीजी ने कुछ समय के लिए अपना राजनीतिक आन्दोलन स्थगित किया तो लॉर्ड रीडिंग ने अपनी प्रति बन्द करा दी।

गांधीजी ने स्वामी से पूछा

ऐसा क्यों किया होगा?

महादेवभाई ने कहा

आजकल आपने राजनीतिक लेख लिखना लगभग बन्द कर दिया है। इधर तो आप यही लिखते रहते हैं कि आश्रम में किसीके कान कटवाये किसीका सिर मुँड़वाया किसीकी चूड़ियाँ निकलवायीं

गांधीजी के

२

जुहू-तट पर

गांधीजी का 'अस्पताल'

२५. सन् १९२२ में गांधीजी को ६ साल की सजा हुई थी। उसमें से लगभग २½ साल तक जेल में रहने के बाद १९२४ में पूना के सासून अस्पताल में उनका 'एपेण्डिसाइटिस' का ऑपरेशन हुआ। इस ऑपरेशन के बाद आखिर सरकार को उन्हें रिहा कर देना पड़ा। रिहाई के बाद गांधीजी सीधे जुहू-तटवाले हमारे 'गाम-वन' नामक बँगले पर आये और ११ मार्च से २८ मई तक वहीं रहे। उन दिनों मेरे पिताजी काश्मीर में थे। इस कारण व्यवस्था का सारा भार मुझ पर ही पड़ा। किन्तु भोजन-सम्बन्धी सारी व्यवस्था अपने जिम्मे लेकर स्व. रेवाशंकरभाई ने पिताजी की अनुपस्थिति का अभाव खटकने नहीं दिया।

गांधीजी जहाँ भी जाते अकेले तो रहते ही न थे। उनके साथ बीमारों का काफिला इतना बड़ा होता था कि एक अच्छा-खासा अस्पताल बन सके। स्व. मगनलाल गांधी की पुत्री राधाबहन, सरदार की पुत्री मणिबहन, आचार्य कृपालानी की बहन जीजीबहन ये सब—साथ ही थीं। सब बीमार।

२६. गांधीजी बँगले की पहली मंजिल के बरामदे में आराम कुर्सी पर बैठा करते थे। सामने पैर रखने के लिए एक स्टूल

२८ स्वर्गीय कृष्णलाल मोहनलाल झवेरी का मेरे पिताजी के साथ गहरा सम्बन्ध था। दीवाली आदि के अवसरों पर दोनों एक-दूसरे से मिलने आया करते थे। गांधीजी के जुहू आने पर मैं उन्हें एक बार गांधीजी के पास ले गया। दोनों बहुत प्रेमपूर्वक मिले। फिर गांधीजी ने कहा

'आपने मेरे साथ काम करने का वादा किया था। कीजिये अब कब आते हैं?'

'दो-तीन साल के बाद। पेन्शन मिल जाने पर।'

'अभी ही क्यों नहीं?'

कृष्णलाल काका ने हाथ जोड़े।

२९ जुहू-वास के इन्हीं दिनों में वैशाखी पूर्णिमा की शाम को बुद्ध-जयन्ती मनायी गयी थी और हमारे बंगले के सामने समुद्र तट पर जनता की भारी भीड़ के सामने दो वर्षों के कारावास के बाद गांधीजी का पहला सार्वजनिक भाषण हुआ था।

३० एक बार जुहू की हमारी लाइब्रेरी में गांधीजी ने प्राकृतिक उपचार के प्रसिद्ध जर्मन-हिमायती लुई कूने की पुस्तकें देखीं। बोले

'तुम्हारे क्या काम की हैं? मुझे दे दो।'

'समूची लाइब्रेरी ही ले जाइये न!'

'एक शर्त पर ले जा सकता हूँ। आलमारी के साथ इन पुस्तकों को साबरमती पहुँचाने की व्यवस्था तुम्हें करनी होगी।'

मैंने कबूल किया।

इस लाइब्रेरी को साबरमती ले जाने की चर्चा एकाधिक बार हुई लेकिन वह साबरमती न गयी सो नहीं ही गयी! कोई-न-कोई विघ्न आता ही चला गया।

६ जुहू-जयन्ती बाद १९२४

७ कस्तूरबा

८ महादेवभाई
हरिपुरा-कांग्रेस १९३

९ विनोबाजी के साथ
सेवाग्राम १९४२

११ सायंप्रार्थना

प्रार्थना में

मिलिया हाउस में

हाउस में

मेरे पिताजी का प्राकृतिक उपचार में विश्वास था। नवरात्रि के ६ दिन पानी पीकर रहते थे। ऑफिस बराबर जाते आते थे। स्वास्थ्य, उपचार, आहार-सम्बन्धी प्रयोग और ऐसी ही अन्य बातों में गांधीजी वैज्ञानिक की-सी रुचि रखते थे। जब उन्होंने पिताजी के नवरात्रिवाले उपवासों की बात सुनी तो तुरन्त ही पत्र लिखा 'उपवास किसलिए कर रहे हैं? उपवास के दिनों में क्या लेते हैं? पानी कितनी बार और कुल कितना पीते हैं? इन उपवासों के करते दस्त होते हैं या नहीं?' आदि कितनी ही ब्योरे की बातें पूछीं और उनका तफसीलवार खुलासा करनेवाला जवाब मांगा।

१२. एक बार मैंने जुहू में गांधीजी के एक भक्त श्री कृष्णदासभाई से गांधीजी के हाथों-कते सूत की एक गुण्डी और उनकी एक खड़ाऊँ-जोड़ मांगी। उन्होंने गांधीजी से पूछकर मुझे दोनों चीजें दे दीं।

गांधीजी ने मुझसे कहा

"रखे रखो। लेकिन इन खड़ाऊँ की पूजा तो नहीं करोगे न? देखना ऐसा कोई काम न करना।"

१३. जब गांधीजी एक बार और जुहू-तटवाले बिड़ला-हाउस में रहने आये थे, उस समय वहां अथवा उसके पड़ोस में ही श्री जमनालालजी बजाज द्वारा हाल ही बनवाये गये 'जानकी-कुटीर' नामक बंगले में मैं 'तुकाराम'-फिल्म में तुकाराम का अभिनय करने वाले श्री विष्णुपन्त पागनीस को उनके भजन सुनवाने के लिए गांधीजी के पास ले गया था। उन्होंने तुकाराम फिल्म के ही भजन गाये। गांधीजी ने उन्हें बहुत ही पसन्द किया। लेकिन उन दिनों गांधीजी का रक्त-चाप (ब्लड प्रैशर) बहुत ऊँचा रहा करता था

३९. सन् १९२८ में शोलापुर की हमारी मिल में और बम्बई की मिलों में मजदूरों ने हड़ताल कर दी। उन दिनों शोलापुर की मिल का प्रबन्ध मैं देखता था। इस हड़ताल के चलते गांधीजी ने विवादास्पद मुद्दों को समझने में और मजदूर-नेताओं की आपत्तियों तथा शिकायतों पर ध्यान देने में बहुत दिलचस्पी ली थी।

बम्बई की हड़ताल के सिलसिले में गांधीजी ने मजदूर-संघ अहमदाबाद के श्री गुलजारीलाल नन्दा को जाँच के लिए भेजा था।

उन दिनों मिल-मालिकों के एसोसियेशन के चेयरमैन श्री जहाँगीर पिटीट थे। मैंने नन्दाजी को सुझाया था कि वे मजदूरों का मामला समझ लेने के अलावा श्री जहाँगीर पिटीट से मिलकर मिलवालों का केस भी समझ लें। मैंने श्री जहाँगीर से पुछवाया। उत्तर मिला कि वे स्वयं श्री नन्दाजी से मिलने के लिए विशेष उत्सुक नहीं हैं। फिर भी उन्हें मिलना हो तो वे घर पर आवें। वे स्वयं उन्हें मालिकों का दृष्टिकोण समझायेंगे आदि।

४० गांधीजी के शोलापुर के आसपास के क्षेत्र की यात्रा करके मोटर से पण्ढरपुर पहुँचने तक के प्रबन्ध की जिम्मेदारी मेरी थी। उन दिनों सड़कें अच्छी नहीं थीं। फोर्ड के अलावा दूसरी मोटरें चल नहीं सकती थीं। मैंने उन्हें फोर्ड में ही घुमाया था। गांधीजी रास्ते में भी सो सकें इसके लिए बैठने की सीट पर पटिया लगवाकर मैंने एक प्लेटफॉर्म-सा बनवा लिया था। गांधीजी उस पर सोया करते थे। रास्ते में गड्ढा आने पर सिर न टकराये इस विचार से अक्सर वे मेरी गोद में सिर रखकर सो जाते थे।

४१ पण्ढरपुर में मैंने गांधीजी से पूछा

'विठोबा के दर्शनों के लिए चलेंगे?'

'हरिजनों को जाने देते हैं?'

उसके और बढ़ जाने के कारण दो-तीन भजन बजाने के बाद ही डॉक्टर ने उन्हें बन्द करा दिया।

वैसे तो मैं फिल्में बहुत देखता नहीं हूँ! लेकिन यह तुकाराम वाली फिल्म मैंने १२ बार देखी थी और महादेवभाई को भी दिखाने ले गया था। बापू

"बापू को दिखाने योग्य है। नाचकिसवाला भाग काटकर अवश्य ही दिखाई जा सकती है।

१४ उन्हीं दिनों मैंने एक बार पू. कस्तूरबा, महादेवभाई, प्यारेलालजी, सुशीलाबहन आदि सबको भोजन के लिए न्योता। ये सब गांधीजी की अनुमति के बिना कहीं जा नहीं सकते थे इसलिए मैंने उनकी अनुमति प्राप्त की। भोजन के बाद वापस आने पर बापू ने देखा कि सुशीलाबहन ने मेरे घर पान खाया था। चिढ़ गये

'मुझे पान से बड़ी चिढ़ है। खानेवाले जहाँ-तहाँ थूकते हैं। यह गन्दी चीज है। मुझे छोड़ ही बात करते हों तो ए- सके डिपरेस्ड बनाया था उसके विरुद्ध मुझे उतनी आपत्ति नहीं जितनी पान के विरुद्ध है।

१५. जिन दिनों गांधीजी बम्बई जुहू में बिड़लाजी के घर अथवा जानकी-कुटीर में ठहरे थे उन दिनों रामदासभाई का लड़का कानन मेरे घर आया करता था। ६-७ साल का रहा होगा। बहुत ही चपल और चालाक। एक बार बिड़ला-कम्पाउण्ड में खड़ी मोटर का ब्रेक खोलकर उसने मोटर पेड़ से टकरा दी थी। एक बार खूब ही गहरे कुएँ में गिर पड़ा था। पानी बहुत नहीं था और तले में रेत थी इसलिए बच गया। जब गांधीजी समुद्र किनारे टहलने निकलते तो वह उन्हें अपने साथ दौड़ाता। गांधीजी दौड़ते। कानन कहता "तेज दौड़ाओ" तो गांधीजी दौड़ते-दौड़ाते।

इण्टरव्यू वाले सेब !

एक बार उसने गांधीजी को पत्र लिखा

"अहिंसा के साथ हथियारों का उपयोग करने की बात भी कहिये।

'आदमी दो घोड़ों पर सवारी नहीं कर सकता।

'क्यों नहीं कर सकता ? मैंने खुद सर्कस में देखा है !

३६ एक बार देवदासभाई का लड़का गोपू गांधीजी के साथ बातें कर रहा था और खेल रहा था। किसीने आकर कहा

'अखबार के संवाददाता इण्टरव्यू के लिए आये हैं।

गोपू "यह इण्टरव्यू क्या चीज है ?

बगल में सेब रखे हुए थे। गांधीजी ने एक सेब उठाकर उसके हाथ में दिया

'इण्टरव्यू अर्थात् सेब। चल अब यहाँ से भाग जा !

२

सोलापुर से नन्दीदुर्ग

टीमकी

१७ सन १९२७ के फरवरी महीने में १९ से २१ तक ३ दिन गांधीजी सोलापुर रहे थे। हमारी मिल के मीनीलाथ गेस्ट-हाउस में ठहरे थे। कस्तूरबा साथ थीं। आराम से नहायी-धोयीं। कहने लगीं

'आज कई दिनों के बाद सिर धोया। गांधीजी के साथ सफर में अक्सर तेल-कुंकुम भी नहीं मिलते!'

गांधीजी ने गेस्ट-हाउस के संडास देखे। बहुत खुश हुए। मिल देखने निकले। वहां भी बोले: पहले संडास दिखाओ। 'ऐसी स्वच्छता हमारे यहां मुश्किल से देखने को मिलती है।'

१८ सोलापुर में मेरे पास 'टीमकी' नाम की एक छोटी कुतिया थी। वह मुझे छोड़ती न थी इसलिए उसे सब जगह साथ ले जाना पड़ता था। गांधीजी बड़े सवेरे उठकर जैसे ही अपने काम में लगते वह उनके दुशाले में घुसकर बैठ जाती! यों तो गांधीजी को यह सब अच्छा न लगता था लेकिन उसे रोकते न थे। बहुत साफ और सुन्दर थी। कोई मुझे छूता तो तुरन्त भौं भौं करके भूकने लगती। गांधीजी कहते

देखो इस टीमकी को देखो। किसीको छूने तक नहीं देती।

'टीमकी' का मतलब है नन्ही छोटी।

गांधीजी के

मेरा ख्याल है कि जाने देते हैं।

गांधीजी मन्दिर में गये। अन्दर जाकर विनोबा के पैरों पर माथा टिका दिया।

लौटते समय चोखामेला की सीढ़ियों के पास आते हुए पता चला कि हरिजन वहीं तक जा सकते हैं। वहाँ से आगे उन्हें जाने नहीं दिया जाता।

'मैंने तुमसे कहा था न? इसीलिए तो मैंने खास तौर पर पूछा था। मैं तुम्हारे भरोसे रहा।'

मैंने अपनी भूल कबूल की। बहुत पछताया।

४२ बाहर आकर देखा तो गांधीजी की चप्पल गायब! बहुत तलाश की पर मिलने क्यों लगे? मैंने कहा

'कोई नहीं! आपके किसी भावुक भक्त का ही काम होगा। जीवनभर उन्हें महात्मा गांधी की अनमोल स्मृति के रूप में सहेजे रखेगा!'

'हाँ, ऐसा भी हो सकता है। लेकिन उस बेचारे को क्या पता कि अब उसके इस 'महात्मा' को ६ महीने तक नंगे पैर चलना पड़ेगा!'

गांधीजी उन दिनों भी अपनी मौत मरे पशु के चमड़े की ही चप्पल पहनते थे। यात्रा में उनके पास वैसी कोई दूसरी जोड़ भी नहीं। कहने लगे

अब मूल आश्रम में किसी पशु के मरने की बाट जोहनी होगी।

यह तो बहुत आसान है। घास मत खिलाइये उसी दम मरेगा और आपको चमड़ा मिलेगा!

गांधीजी हँस दिये।

४६. सन् १९२७ में गांधीजी रत्नागिरि गये थे। उस समय वहां उन्होंने सार्वजनिक सभा में लोकमान्य की जन्मभूमि का उल्लेख करते हुए कहा था कि उनके लिए तो वह एक पवित्र तीर्थ-स्थान ही है। बाद में भावपूर्ण शब्दों में श्री सावरकरजी की चर्चा करते हुए वे बोले थे

'लोकमान्य के स्वराज्य-मंत्र को सिद्ध करने का मेरे जितना प्रयत्न दूसरों ने चाहे किया हो किन्तु मुझसे अधिक करने का दावा कोई नहीं कर सकता। क्योंकि मैं तो मानता हूँ कि न केवल स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है बल्कि उसे प्राप्त करना हमारा पवित्र कर्तव्य है। हम इससे जितने दूर रहेंगे उतने ही मनुष्यता से भी दूर होंगे। बिना स्वराज्य के हम अपने में विद्यमान शक्तियों का प्रकट ही नहीं कर सकते।

'और लोकमान्य ने जिस स्वराज्य का स्वप्न देखा था वह स्वराज्य अकेले रत्नागिरि का अथवा महाराष्ट्र का नहीं बल्कि समूचे भारतवर्ष का गरीब-अमीर सभी का था। जब तक इस देश में रहनेवाले करोड़ों गरीबों को भरपेट खाना नहीं मिलता तब तक मेरे विचार में स्वराज्य का कोई अर्थ नहीं रहता।

'आप पूछते हैं कि मिल का कपड़ा पहनने से गरीबों की सेवा क्यों नहीं होगी? शोलापुर-मिल के मालिक नरोत्तम सेठ मेरे मित्र हैं। अभी-अभी मैं उनका मेहमान बनकर उनके घर रह आया हूँ। उनके पुत्र ने मुझ पर अपना अपार प्रेम बरसाया है। लेकिन क्या इसीलिए मुझे उनकी मिल के कपड़े का उपयोग करके इन 'गरीब' बाल-बच्चों की सेवा करनी चाहिए? मैं कहता हूँ कि ये लोग भी कभी ऐसा नहीं मानेंगे कि उनकी मिल का कपड़ा पहनने से हम अपने देश के गरीबों की सेवा कर सकेंगे।

५५ मैसूर के महाराजा को चरखे में बड़ी दिलचस्पी थी। एक बार मैंने गांधीजी से इसकी चर्चा की और कहा कि वे प्रतिदिन नियमित रूप से कातते हैं। मुझसे बोले :

यह बात मेरे कानों तक पहुँच चुकी है।

लेकिन उन्हें एक चरखा-शिक्षक की आवश्यकता है। इस सम्बन्ध में अभी-अभी उनका एक पत्र आया है।

गांधीजी ने देवदासभाई को भेजा। देवदासभाई कुछ समय रहकर और सिखाकर वापस आये। गांधीजी ने कहा :

आइये महाराजा मैसूर के चरखा-गुरु !

५६ सन १९२७ में मैसूर के महाराजा ने गांधीजी को स्वास्थ्य की दृष्टि से जलवायु-परिवर्तन के निमित्त अपने नन्दी-दुर्ग पर्वत पर आकर रहने के लिए आमंत्रित किया था। इसके कारण अंग्रेजी हुकूमत से सम्बन्ध रखनेवालों में अन्दर ही अन्दर एक खलबली-सी मची थी। ब्रिटिश-शासन की अधीनता में रहनेवाली एक बड़ी रियासत का राजा इस प्रकार गांधीजी को अपने राज्य के सम्माननीय अतिथि के रूप में आमंत्रित करने का साहस करे, उस जमाने के खयाल से यह एक अनोखी चीज थी। दूसरी ओर इसके कारण समूचे देश की जनता ने एक प्रकार के उत्साह और गौरव का ही अनुभव किया था।

मैसूर के राज-परिवार के साथ हमारे मोरारजी घराने का तीन पीढ़ी पुराना निकट का नाता था। इस कारण राज-परिवार की ओर से गांधीजी को नन्दी-दुर्ग के लिए आमंत्रित कराने में मैं एक हद तक निमित्त बना था। और जिन दिनों गांधीजी मैसूर के नन्दी-दुर्ग में रहे मैं वहाँ गया भी था। इसलिए इस यात्रा की

गांधीजी के

सफलता के सिलसिले में अपना आभार प्रकट करते हुए मैंने बाद में गांधीजी को एक पत्र लिखा था। उत्तर में उन्होंने मुझे लिखा

"मैसूर की सफलता के लिए तुम गाड़ी के नीचे चलनेवाले कुत्ते के बराबर यश तो पा ही नहीं सकते। क्योंकि उसकी होशियारी तुममें है ही कहाँ? वह तो बिना बोझ ढोये ही बोझ ढोनेवाले की तरह हाँफकर दिखाता है। और उसकी जात-बिरादरीवाले वैसा मानते भी हैं। हाँ तुम्हें उस कहानीवाले भिश्ती की उपमा दी जा सकती है। लेकिन मेरे पास विक्टोरिया क्रॉस कहाँ कि तुम्हें दूँ?

"अथवा गाड़ी के नीचे चलनेवाले कुत्ते की होशियारी हमारी मानो। गाड़ी तो तुमने खींची पर अगर कोई पागल बनकर उसका भार ढोने का यश हमें देना चाहे तो हम उसे लूट लेंगे।

"सचमुच तुम्हारा रोपा हुआ बीज फला है। ईश्वर गरीबों के प्रति तुम्हारे प्रेम को दिन प्रतिदिन बढ़ाये।

बीजारोपण में मैसूर के राज-परिवार में चरखे के प्रचार का और महाराजा स्वयं चरखा कातते थे इस सफलता का संकेत है। भिश्तीवाली बात मैं समझ नहीं सका था इसलिए जब दुबारा उनसे मिला तो मैंने उसके बारे में पूछा। इस पर उन्होंने मुझे यह बात इस तरह सुनायी

एक बार बादशाह मुहम्मद तुगलक नदी की बाढ़ में पड़कर बहने लगा। किनारे पर एक भिश्ती चला जा रहा था। उसने अपनी मशक फेंककर बादशाह को बचा लिया। बादशाह ने उससे कहा 'जो चाहो माँगो। जो माँगोगे दूँगा।' भिश्ती बोला 'मेरी मशक के चमड़े के रुपये बनवाकर मेरे नाम से चलाइये।' बादशाह ने उसकी माँग मंजूर कर ली। भिश्ती का नाम भी मुहम्मद था। इस तरह उसके नाम से चमड़े के सिक्के

समझाकर बादशाह ने उन्हें नवाया! जिस तरह जंग के जमाने में बहुत बड़ी बहादुरी दिखानेवाले को 'विक्टोरिया क्रॉस' मिलता है उसी तरह उन दिनों उस मिस्त्री ने इसीमें अपना भारी सम्मान समझा होगा। गांधीजी ने इसी विचार से अपने पत्र में विक्टोरिया क्रॉस का उल्लेख किया था।

२६. जब गांधीजी पहली बार दक्षिण गये थे उस समय वे दो-तीन दिन बेंगलोर में रहे थे। मैं भी वहीं था। एक दिन एक मैसूरी ब्राह्मण की पत्नी थाली में नारियल केले पान-सुपारी फूल आदि लेकर आयी और सब-कुछ गांधीजी के पैरों के पास रखकर और उनके पैर छूकर सामने खड़ी रही। बापू ने हाथ जोड़े। दो-तीन बार जोड़े पर वह बहन उसी तरह खड़ी रही। उस समय राजाजी गांधीजी के साथ थे।

"क्या इन्हें कुछ कहना है? जरा पूछिए।

राजाजी ने उस बहन से कन्नड़ में बातचीत की।

"इन्हें पुत्र की आवश्यकता है। आप महात्मा हैं इसलिए आपका आशीर्वाद चाहती हैं।

"मैं महात्मा नहीं हूं। मैं आशीर्वाद कैसे दूं?

"ये कहती हैं कि आपने बहुतों को दिये हैं। और वे फले हैं तो मुझे क्यों नहीं देते?

'मुझे अभी ही इस बात का पता चला कि मुझमें ऐसी कोई शक्ति है। लेकिन इनसे कहिये कि गांव में इतने सारे बालक हैं उनमें से एक को गोद लेकर उसका लालन-पालन क्यों नहीं करती?

बहन ने कहा : 'मैं तो रिश्तेदारों के अथवा पड़ोसियों के बालकों को बहुत प्यार करती हूं। लेकिन अपना तो आखिर अपना ही है न!

गांधीजी के

४

पिताजी का अवसान

आश्वासनभरा तार

५०   ता० ४ नवम्बर १९२९ की शाम को धन्नासा-घाट में मेरे पिताजी की मृत्यु हुई। उस समय गांधीजी यात्रा में थे। ८ नवम्बर को उन्होंने हाथरस से मुझे नीचे लिखा आश्वासनभरा तार भेजा था

पिताजी के स्वर्गवास की सूचना देनेवाला जमनालालजी का तार अभी-अभी मिला। तुम्हारे इस दुःख में मेरी पूरी-पूरी सहानुभूति है। मेरी तरफ से माँ को आश्वासन देना। उनको, तुमको और दूसरों को ईश्वर पर श्रद्धा रखकर धैर्य धारण करना चाहिए। ईश्वर तुम्हें आघात सहन करने की शक्ति दे। जमनालालजी ने मुझे लिखा है कि तुम्हें उनकी मदद और सलाह की जरूरत है या नहीं सो मैं तुमसे पूछ लूँ। मेरी यात्रा का कार्यक्रम 'यंग इण्डिया' में छपा है।

उसी दिन पत्र भी लिखा। उसमें लिखा

आज तुम्हें तार दिया है, मिला होगा। मैंने तो अभी-अभी अखबार में पढ़ा और जमनालालजी का तार मिला। और पढ़ा। यह दुर्घटना कैसे घट गयी? अपने स्वभाव के अनुसार जमनालालजी ने मेरे पर यह जिम्मेदारी डाली है कि तुम्हें उनकी सलाह अथवा मदद की जरूरत हो तो मैं उसके बारे में तुमसे पूछ लूँ

इसलिए तुमसे पूछा है। तुम बहादुर हो धीरज रखोगे ही। जिस रास्ते पिताजी गये हैं हम जानते हैं कि उस रास्ते हम सबको जाना ही है, फिर शोक किस बात का? माताजी तो ज्ञानी हैं संयमी हैं। इसलिए उन्हें हर्ष-शोक न होना चाहिए।

पिताजी की गादी को सुशोभित करना। सारे कामों में खूब धीरज रखना। मैं चाहता हूँ कि मुझे खबर बराबर लिखते रहो।

५१ इसके अलावा उन्होंने अपने 'नवजीवन' और 'यंग इण्डिया' नामक दोनों साप्ताहिकों में भी पिताजी की मृत्यु पर टिप्पणियाँ लिखी थीं। उनमें लिखा था 'उनकी (सेठ नरोत्तम मोरारजी की) अकाल मृत्यु से देश ने एक सुन्दर व्यापारी और देशभक्त खो दिया है। जिस ज़माने में व्यापारी देश का काम करने से डरते और शरमाते थे उस ज़माने से नरोत्तम उसमें हाथ बँटाने लगे थे और यथाशक्ति सेवा करते रहते थे। उन पर डॉ. बेसेण्ट और गोखले का बहुत गहरा प्रभाव पड़ा था। मैंने अनुभव किया है कि अपनी मिलों में काम करनेवाले मजदूरों के साथ उनका सम्बन्ध अच्छा था। उनकी दान-धारा प्रबल थी और उसका अधिकांश भाग देश के वातावरण के अनुकूल और देश-हित के कामों में खर्च होता था। सिन्धिया कम्पनी की उनकी योजना में धनोपार्जन के अंग की तरह ही देश-सेवा का भी अंग था। इस परिवार के साथ मेरा तो निकट का सम्बन्ध है। इसलिए मैं इसके दुःख में सहभागी हूँ।

पिताजी की मृत्यु के बाद तत्काल मेरे सामने जो उलझनें आकर खड़ी हुईं, जमनालालजी ने उनमें व्यक्तिगत रुचि दिखायी और आर्थिक दृष्टि से मेरी मदद भी की।

५२. मेरे पिताजी के प्रवसान के बाद कुछ मित्रों ने इस बात की कोशिश की कि बम्बई के शेरिफ के नाम से एक सार्वजनिक शोक-सभा की जाय। मुझे इसमें कोई दिलचस्पी न थी क्योंकि यह केवल एक रस्म-प्रदाई की बात थी। तिस पर उन दिनों ऐसी सभाओं के सभापति भी गवर्नर ही हुआ करते थे। मैंने इस बात का आग्रह किया कि सभा गांधीजी के सभापति होने पर ही की जाय। अपने उक्त मित्रों के जोर देने पर मुझे गांधीजी को पत्र लिखकर यह विनती करनी पड़ी कि वे ऐसी एक सभा का सभापतित्व करें।

उनसे नीचे लिखा उत्तर मिला

"तुम्हारा पत्र मिला। तुम्हारी मांग को अस्वीकार करने में मुझे अतिशय क्षोभ तो होता ही है, लेकिन मैं ऐसी सभा के लिए बिलकुल अयोग्य हूँ। नामों की सूची देखकर ही चौंक उठा हूँ। ऐसी सभा में मेरा उपयोग क्या ? और मैं करूँ क्या ? सर पुरुषो त्तमदास अथवा सर दीनशा पिटीट अवश्य उपयोगी होंगे। मेरी सलाह तो यह है कि इससे भिन्न विचार छोड़ ही देना।

आखिर वह शोक-सभा नहीं हो सकी।

५३ सिन्धिया कम्पनी के कार्यालयवाला नया मकान 'सिन्धिया हाउस' तैयार हुआ। निश्चय किया गया कि उसमें मेरे पिताजी की मूर्ति स्थापित की जाय। स्वर्गीय वालचन्द काका की और सिन्धिया वाले अन्य सब लोगों की इच्छा थी कि इस मूर्ति का अनावरण गांधीजी के हाथों कराया जाय। गांधीजी से कुछ भी करवाना या कहलाना होता तो मित्र मुझे ही आगे कर दिया करते थे। इस काम के सिलसिले में भी फिर मुझीको मोरचे में उतारा गया। मेरे विनती-पत्र के उत्तर में गांधीजी ने लिखा

"मेरी दृष्टि में यह कहना अपर्याप्त है कि मैं पिताजी को पहचानता था। उनके साथ तो घर का-सा सम्बन्ध था। इसलिए मैं उनकी मूर्ति का अनावरण करूँ उसमें विशेषता क्या होगी? न भी करूँ तो उससे इस सम्बन्ध में कमी भी क्या आयेगी? भाई भाई की मूर्ति का अनावरण थोड़े ही करता है।

ऐसे कार्यक्रमों में अब मुझे कोई दिलचस्पी रही ही नहीं है। इसलिए जरा भी बुरा न मानते हुए दिल से समझकर मुझे मुक्त रखो। जिस दिन भवन का उद्घाटन हो उसी दिन मूर्ति का अनावरण भी कराना और सो भी सरदार के हाथों। मुझे माफ कर दो न

तिलक-हाउस का उद्घाटन सरदार वल्लभभाई के हाथों ही हुआ और उसी दिन उसी समय पिताजी की मूर्ति का अनावरण भी स्वर्गीय भूलाभाई देसाई ने किया।

२४ गांधीजी को पहले-पहल 'महात्मा' किसने कहा और वे कब से महात्मा के नाम से पहचाने जाने लगे इसके बारे में असंख्य मत हैं। असंख्य लोगों के अनगिनत दावे हैं। ऐसी एक स्मृति मेरे पास भी है। मेरे पिताजी की मृत्यु के बाद सोलापुर की मिल मजदूर [illegible] जयकर-होळकरी की सभा हुई। स्वर्गीय एक [illegible] दीनशा [illegible] थे और उन्हींकी पेढीवाले स्वर्गीय [illegible] गांधीजी थे।

सभा [illegible] ने चाहा कि वे स्वतंत्र रीति से [illegible] और [illegible] से कहा कि वे दूसरे कमरे में [illegible]। [illegible] कमरे में जाकर बैठे। चूँकि [illegible] सम्बन्ध था इसलिए चर्चा उन्हींके

गांधीजी के

बारे में बात चली। एफ. ई. ने पूछा 'गांधी को 'महात्मा' की टाइटिल पहले-पहल किसने दी ? पहला नाम गोखलेजी का लिया गया। दूसरे भी दो-तीन नाम सुझाये गये लेकिन अन्त में निश्चय यह रहा कि श्रीमती बेसेण्ट ने उन्हें पहले-पहल उस समय 'महात्मा' कहा जब वे दक्षिण अफ्रीका से लौटे थे। इसमें सचाई कितनी है सो तो राम ही जाने। लेकिन इससे यह सिद्ध हुआ कि एफ. ई. दीनशा और वाची दोनों गांधीजी में गहरी दिलचस्पी रखते थे।

१९ जब सन् १९१९ में मैं अपने स्वर्गीय पिताजी की अस्थियाँ गंगाजी में विसर्जित करने के लिए हरद्वार ले जा रहा था तो मेरी दादी-माँ ने मुझसे कहा कि मैं किसी आदमी को अपने साथ ले जाऊँ। मेरे साथ मेरे काका रतनसीभाई के पुत्र प्रताप चलने वाले थे। इसके अलावा मेरे पास दूसरा ऐसा कोई आदमी नहीं था जो ऐसी यात्रा में उपयोगी सिद्ध हो। उलटे मुझीको उसे सँभालना पड़ जाय।

किन्तु दादी-माँ के आग्रह के कारण अन्त में मुझे अपने एक नौकर को साथ ले जाना पड़ा। दिल्ली से हरद्वार जानेवाली ट्रेन में अपने डिब्बे के साथ जुड़े नौकरोंवाले डिब्बे में मैंने इस नौकर को बैठा दिया था और कह दिया था कि डिब्बा सीधा हरद्वार पहुँचेगा। रास्ते में कहीं गाड़ी बदलनी नहीं होगी।

लेकिन वह सहारनपुर जंक्शन पर उतर गया। हरद्वार में हमें नहीं मिला। वह मुझे 'काकू सेठ' के नाम से ही जानता था। दूसरा कोई नाम-पता उसे मालूम न था।

हरद्वार पहुँचकर हमने हर की पैड़ी पर गंगाजी में अस्थियाँ विसर्जित की और वहाँ से लाहौर में चल रहे कांग्रेस-अधिवेशन के

लिए निकल पड़े। अपने इसी अधिवेशन में कांग्रेस ने सम्पूर्ण स्वतंत्रता का प्रस्ताव पास किया था। विषय-निर्धारिणी सभा की बैठक के चलते गांधीजी ने अपना खास आदमी भेजकर मेरे बारे में पूछ-ताछ करवायी थी। मैं गांधीजी से मिला नहीं था न मैंने उन्हें अपने लाहौर पहुँचने की कोई सूचना ही भेजी थी। मैं गांधीजी के पास पहुँचा।

'क्या तुम्हारा आदमी लौट गया है?' वह मिल गया है और दिल्ली में शोलापुर मिल की दुकान पर पहुँच गया है।

सौभाग्य से हमारे इस नौकर को शोलापुर मिल का नाम इसलिए याद रह गया था कि इस मिल की दिल्लीवाली दुकान के लोग मुझसे मिलने के लिए दिल्ली-स्टेशन पर आये थे। इस कारण दिल्ली पहुँचने के बाद वहाँ शोलापुर मिल की दुकान का पता पूछता हुआ वह ठिकाने पर पहुँच गया था।

दुकान के लोगों को लाहौर का मेरा पता मालूम नहीं था लेकिन यह सोचकर कि मैं लाहौर में गांधीजी के पास ठहरूँगा अथवा उनसे मिले बिना लाहौर नहीं छोड़ूँगा उन्होंने गांधीजी के नाम तार कर दिया था। इस तरह हमें अपने आदमी का पता चला।

५६ मेरे पिताजी के पास चाँदी की एक रिपीटर घड़ी थी। बटन दबाने पर वह घण्टे आध घण्टे और पाव घण्टे के अन्तर से तरह-तरह की आवाज करती थी। पिताजी बालकों को बहुत चाहते थे। जब वे शोलापुर जाते तो मिल-मजदूरों के बच्चों के सामने अपनी यह घड़ी बजाकर वे उनका मनोरंजन किया करते थे। पिताजी की मृत्यु के बाद मैंने यह घड़ी गांधीजी को दी क्योंकि गांधीजी को रात में समय देखने की कठिनाई रहती थी। गांधीजी ने घड़ी मुझसे ली और दांडी-कूच के समय उन्होंने उसे अपनी

गांधीजी के

कमर में लटकाया। इस कूच के बारे में उन्होंने हाँसोटी गाँव से लिखे अपने पत्र में इसका उल्लेख किया है

"तुम्हारी याद तो अक्सर आती रहती है। पिताजी की घड़ी रोज मेरी कमर में लटकी रहती है इसलिए उनका स्मरण तो बना ही रहता है।

इसके कुछ महीनों बाद यरवदा जेल से ८ सितम्बर, १९३१ को गांधीजी ने मुझे जो पत्र लिखा था उसमें उन्होंने पुनः लिखा

"रोज तुम्हारा स्मरण करता हूं। घड़ी तो मेरे सामने पड़ी ही है न?

किन्तु समय-समय प्रकार की यात्राओं पर से गांधीजी घण्टे आध घण्टे और पाव घण्टे के फरक को पकड़ नहीं पाते थे इसलिए वह घड़ी उन्हें जँची नहीं। उन्होंने उसे जवाहरलालजी की घड़ी से बदल लिया। उन्होंने यह भी माना कि इस बात की जानकारी मुझे देनी चाहिए। इसलिए एक पत्र द्वारा मुझे इसकी सूचना भी भेज दी।

५७ शुरू में गांधीजी मेरे नाम के पत्रों के आरम्भ में 'भाईश्री' लिखा करते थे और नीचे 'मोहनदास के आशीर्वाद' इन शब्दों में अपनी सही करते थे। कुछ समय के बाद आरम्भ 'चि' से करके अन्त में अपनी सही 'बापू के आशीर्वाद' के रूप में करने लगे। यह चीज अन्त तक चलती रही। जब खुशमिजाजी की हालत में होते और कोई उनके पैर छूने आता तो गांधीजी उसकी पीठ पर जोर से एक घूँसा जमाते थे। कभी-कभी तो इतनी जोर से जमाते कि पीठ लाल हो जाती। लेकिन जिसकी पीठ पर यह घूँसा पड़ता था उसकी छाती तो इस प्रसादी को पाकर गजभर

लिए निकल पड़े। अपने इसी अधिवेशन में कांग्रेस ने सम्पूर्ण स्वतंत्रता का प्रस्ताव पास किया था। विषय-निर्धारिणी सभा की बैठक के चलते गांधीजी ने अपना खास आदमी भेजकर मेरे बारे में पूछ-ताछ करवायी थी। मैं गांधीजी से मिला नहीं था न मैंने उन्हें अपने लाहौर पहुँचने की कोई सूचना ही भेजी थी। मैं गांधीजी के पास पहुँचा।

'क्या तुम्हारा आदमी खो गया है? वह मिल गया है और दिल्ली में शोलापुर मिल की दुकान पर पहुँच गया है।

सौभाग्य से हमारे इस नौकर को शोलापुर मिल का नाम इसलिए याद रह गया था कि इस मिल की दिल्लीवाली दुकान के लोग मुझसे मिलने के लिए दिल्ली-स्टेशन पर आये थे। इस कारण दिल्ली पहुँचने के बाद वहाँ शोलापुर मिल की दुकान का पता पूछता हुआ वह ठिकाने पर पहुँच गया था।

दुकान के लोगों को लाहौर का मेरा पता मालूम नहीं था लेकिन यह सोचकर कि मैं लाहौर में गांधीजी के पास पहुँचूँगा अथवा उनसे मिले बिना लाहौर नहीं छोड़ूँगा उन्होंने गांधीजी के नाम तार कर दिया था। इस तरह हमें अपने आदमी का पता चला।

५६ मेरे पिताजी के पास चाँदी की एक रिपीटर घड़ी थी। बटन दबाने पर वह घण्टे, आध घण्टे और पाव घण्टे के अन्तर से तरह-तरह की आवाज करती थी। पिताजी बालकों को बहुत चाहते थे। जब वे शोलापुर जाते तो मिल-मजदूरों के बच्चों के सामने अपनी यह घड़ी बजाकर वे उनका मनोरंजन किया करते थे। पिताजी की मृत्यु के बाद मैंने यह घड़ी गांधीजी को दी क्योंकि गांधीजी को रात के समय देखने की कठिनाई रहती थी। गांधीजी ने घड़ी कबूल की और दांडी-कूच के समय उन्होंने उसे अपनी

गांधीजी के

इस आश्रम की अफवाहें तो फैल ही रही थीं कि सरकार गांधीजी को गिरफ्तार कर लेगी और आश्रम को बन्द करेगी। लेकिन गांधीजी ने घोषणा की थी कि आश्रम का कुछ भी क्यों न हो वे स्वयं तो स्वराज्य प्राप्त होने के पहले आश्रम में नहीं लौटेंगे।

इस देशव्यापी उत्तेजना और उथल-पुथल के बीच गांधीजी को अपने निजी मामलों के लिए परेशान न करने के ख्याल से मैं उन्हें अपने बारे में कुछ भी लिखता न था। इसके बावजूद भारी व्यस्तता के बीच भी गांधीजी स्वयं मेरी चिन्ता रखते और मुझे पत्र लिखकर पूछताछ करते रहते।

इसलिए मैंने निश्चय किया कि मैं एक बार उनके पास हो आऊँ। फलतः कूच के दिनों में मैं सूरत के समीप छापरा भाठा-पड़ाव पर उनसे मिला। गांधीजी ने पूरा समय देकर मुझसे बातचीत की। बाद में मैंने 'आश्रम-भजनावलि' की एक प्रति पर उनके हस्ताक्षर प्राप्त किये और सूरत तक साथ रहकर वापस लौट आया। ●

उठाता था। गांधीजी के निकटवर्ती अथवा अन्तेवासी के रूप में काम करने में मैं सहज ही बहुत गौरव का अनुभव किया करता था लेकिन अगर कोई मेरी पहचान उनके पुत्र या आश्रमवासी के रूप में करवाता अथवा कोई उनका फोटो खींचता होता तो उस समय उनके नजदीक रहने में मुझे डर लगा करता।

गांधीजी के बारे में अखबारों में लिखने अथवा रेडियो पर बोलने के संदेशे मुझे अक्सर मिला करते। एक बार मैंने रेडियो वालों को स्वीकृति भी दे दी। लेकिन जब समय आया तो मैंने अपनी लाचारी दरशायी। कुछ याद ही न पड़ता था। जिसके साथ मनुष्य का गाढ़ा सम्बन्ध होता है उसके बारे में लिखने अथवा बोलने का अवसर आने पर कइयों की ऐसी ही स्थिति हो जाती है। खुद गांधीजी का भी यही हाल था।

५८. इसके बाद मैं [illegible] महीनों तक पिताजी की मृत्यु के पश्चात् जो जिम्मेदारियाँ मुझ पर आ पड़ी थीं उनकी उलझनों में फँसा रहा। दूसरी तरफ गांधीजी ने सन् १९१ के ऐतिहासिक सत्याग्रह की तैयारियाँ शुरू कर दी थीं और देश के चारों कोनों में फैली हुई जनता का आवाहन करके उन्होंने क्रम क्रम से सविनय भंग की आग सुलगानी शुरू कर दी थी। भावी लड़ाई की उत्तेजना से काश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक समूचा देश खलबला उठा था।

गांधीजी ने घोषणा की थी कि वे सूरत जिले के दांडी गांव के पास समुद्र-तट पर कुदरती तौर से बननेवाले नैसर्गिक नमक का गैरकानूनी ढंग से उठाकर ६ अप्रैल के दिन सविनय कानून भंग करने और इसके लिए वे अपने ७ साथियों के एक दल को लेकर साबरमती आश्रम से पैदल रवाना होंगे। उस समय

गांधीजी के

अपने उसी पत्र में मैंने गांधीजी को लिखा था

'भल्लूकाका (सर लल्लूभाई शामलदास) भी मानते हैं कि जहाँ तक रेवेन्यू का सम्बन्ध है सरकार का केस बिलकुल लचर है।

रेवेन्यू के मामले में सर लल्लूभाई का जो ज्ञान था समूचे प्रदेश में उनकी बराबरी करनेवाला दूसरा शायद ही कोई रहा हो।

६० बारडोली की इस लड़ाई के दिनों में भी कानजी द्वारकादास प्रतिदिन की ताजा खबरें जानने के लिए हमेशा मेरे दफ्तर में आया करते थे। एक दिन डाक से महादेवभाई का एक पत्र मिला। मैंने बाद में पढ़ने के विचार से उसे एक ओर रख दिया। कानजीभाई अक्षर पहचानते थे। बोले "पढ़ो। बारडोली की ताजा खबरें होंगी।" अब वह पत्र तो मेरे पास नहीं रहा किन्तु उसमें लिखा था कि सर पुरुषोत्तमदास बारडोली की लड़ाई में विशेष रुचि नहीं ले रहे हैं शायद इसलिए कि उनके काका सर चुनीलाल सरकार के एक बड़े मेम्बर हैं। यह बात सर फ़ज़ल करीमभाई के पास पहुँची। उन्होंने टाटा के डाइरेक्टरों की बोर्ड-मीटिंग में सर पुरुषोत्तमदास से कहा

"गांधी-दर्शन में आपके भाव उतर गये हैं!

सर पुरुषोत्तमदास चिढ़ गये और उन्होंने गांधीजी को एक कड़ा पत्र लिखा।

सेठ मानजी नारणजी ने मुझसे इसकी चर्चा की। (उस समय तक पत्र भेजा नहीं गया था।) इस गलतफहमी को दूर करने के लिए मैं दौड़ा-दौड़ा सर पुरुषोत्तमदास आदि के पास पहुँचा। महादेवभाई को तार किया। घबड़ाकर गांधीजी से मिलने भी गया। बातचीत की। बोले

६८. परिषद् शुरू होने के एक दिन पहले बुआजी (स्वर्गीय सरोजिनी नायडू) गांधीजी के दल में सम्मिलित होने के लिए बम्बई से रवाना होनेवाली थीं। मैं उनसे मिलने गया। बोलीं "देख तो यह बूढ़ा क्या करने चला है? एमर्सन ने व्यर्थ की बकवास नहीं की है। सारी दुनिया के सजावटवाले इकट्ठा हुए हैं। सचमुच इन सबके सामने हमारी हँसी होगी।

साड़ियाँ रंगनेवाले एक मुसलमान मित्र उस समय मेरे साथ थे। उन्होंने अपने हाथों-रँगी एक साड़ी सरोजिनी देवी को भेंट की। फिर बोले

"अगर आप कहें तो गांधीजी के लिए भी एक बढ़िया तिरंगी लँगोटी तैयार कर दूँ।

बुआजी बहुत विनोद-प्रिय थीं। अपने स्वभाव के अनुसार वे बरबस हँस पड़ीं। बोलीं :

देखिये ऐसा कुछ मत कर बैठिये। क्योंकि अगर कहीं सचमुच ही स्वराज्य मिल गया तो यह बूढ़ा उसकी खुशी में अपनी तिरंगी लँगोटी ही उतारकर उसे झण्डे की तरह फहरा देगा!

६९. अगले साल सन् १९३१ में गांधी-इरविन-सन्धि के कारण लड़ाई मुल्तवी रही। सब जेलों से छूटे और फिर कराची में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। गांधीजी कराची जाने के लिए बम्बई आये। विले-पार्ले में उन्हें एक थैली भेंट की गयी। सर नेस वाडिया कावसजी जहाँगीर एफ. ई. मोदी आदि मिल-मालिक मिलने आये। कपड़े पर लगी एक्साइज-ड्यूटी को हटवाने में उन्हें गांधीजी के समर्थन की आवश्यकता थी। चर्चा के चलते सर कावसजी ने गांधीजी को 'गांधी-सेठ' कहकर सम्बोधित किया।

६२. जब शुरू होने के एक दिन पहले बुआजी (स्वर्गीय सरोजिनी नायडू) गांधीजी के दल में सम्मिलित होने के लिए बम्बई से रवाना होनेवाली थीं। मैं उनसे मिलने गया। बोलीं "देख तो यह बूढ़ा क्या करने चला है? एमर्सन ने व्यर्थ की बकवास नहीं की है। सारी दुनिया के संवाददाता इकट्ठा हुए हैं। सचमुच इन सबके सामने हमारी हँसी होगी।"

साड़ियाँ रँगनवाले एक मुसलमान मित्र उस समय मेरे साथ थे। उन्होंने अपने हाथों-रँगी एक साड़ी सरोजिनी देवी को भेंट की। फिर बोले

"अगर आप कहें तो गांधीजी के लिए भी एक बढ़िया तिरंगी लँगोटी तैयार कर दूँ।

बुआजी बहुत विनोद-प्रिय थीं। अपने स्वभाव के अनुसार वे बरबस हँस पड़ी। बोलीं

देखिये ऐसा कुछ मत कर बैठिये। क्योंकि अगर कहीं सचमुच ही स्वराज्य मिल गया तो यह बूढ़ा उसकी खुशी में अपनी तिरंगी लँगोटी ही उतारकर उसे झण्डे की तरह फहरा देगा।

६३. अगले साल सन् १९३१ में गांधी-इरविन-सन्धि के कारण लड़ाई मुल्तवी रही सब जेलों से छूटे और फिर कराची में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। गांधीजी कराची जाने के लिए बम्बई आये। विले-पार्ले में उन्हें एक थैली भेंट की गयी। सर नेस वाडिया कावसजी जहाँगीर एफ ई दिनशा मोदी आदि मिल-मालिक मिलने आये। कपड़े पर लगी एक्साइज ड्यूटी को हटवाने में उन्हें गांधीजी के समर्थन की आवश्यकता थी। चर्चा के चलते सर कावसजी ने गांधीजी को 'गांधी-सेठ' कहकर सम्बोधित किया।

सब हँस पड़े।

पर कावसजी ने अनुभव किया कि महात्मा गांधीजी को गांधी कहने में उनसे कुछ भूल हुई है।

इसलिए तुरन्त ही अपनी भूल का सुधारते हुए बोले :

I mean मा'त्मा सेठ !"

यह सुनकर तो हंसी के फव्वारे दुगुने जोर से छूट पड़े।

लेकिन सर कावसजी तो आखिर तक समझ ही नहीं पाये कि गड़बड़ क्या हुई है।

६४ विले-पार्ले की सभा में गांधीजी को सोने की एक तख्ती भी मिली थी। गांधीजी ने उस पर सभा में ही थोड़े हार काटे और फिर वहीं उसे नीलाम किया। श्री रामनिवास रुइया ने रु २,) देकर वह तख्ती ली।

•

६५. गांधीजी गोलमेज-परिषद् के लिए विलायत जायेंगे या नहीं बिलकुल अन्तिम समय तक इसका निश्चय नहीं हो पाया था। चूंकि महादेवभाई मुझे लिख चुके थे इसलिए पी. एण्ड ओ. कम्पनी के साथ टिकट आदि की बात तो मैंने कई दिन पहले ही तय कर ली थी। मेरे एक फुफेरे भाई मानते थे कि उन्हें बिलकुल ताजा-से-ताजा 'अन्दर की बात' मालूम होती रहती है। मुझसे बोले : "मैं जानता हूं गांधीजी नहीं जायेंगे। स्वयं शर्त बदने को भी तैयार थे। मैंने कहा

'मैं शर्त नहीं बदूंगा क्योंकि मैं जानता हूं।

इतने पर भी उन्होंने शर्त बदी और वे हारे। कोई दस रुपये की शर्त थी। चाय का समय हो रहा था इसलिए उस रकम के पेड़े मँगवाये गये और दफ्तर के सब लोगों ने खाये।

६६. जिस दिन गांधीजी की मशहूर गोलमेज-परिषद् के लिए बिदा हुई, उस दिन मैं बड़े सबेरे ही मणि-भुवन पहुँच गया था। एक पासपोर्ट-अधिकारी जानेवालों के हस्ताक्षर कराने के लिए वहाँ आया था। बापू ने उससे पूछा

'सबके हस्ताक्षर मिल गये ?

"जी एक देवदासभाई के ही बचे हैं। वे मणि-भुवन में नहीं हैं।

सुनकर गांधीजी ने कहा था

"मेरी सारी 'वैनिटी' (अहंकार) उसमें घुस बैठी है। न जाने क्या-क्या सामान बटोरने के लिए कहीं भटक रहा होगा।

विलायत की इस यात्रा के लिए देवदासभाई और महादेव भाई ने कई सन्दूकें सूटकेस आदि इकट्ठा करके उन्हें तरह-तरह के सामानों से भर लिया था। सब कोई जानते हैं कि वह सारा सामान गांधीजी ने किस तरह अदन से वापस लौटा दिया था।

६७ इस गोलमेज-परिषद् के सिलसिले में जिन दिनों गांधीजी लन्दन में थे उन्हीं दिनों अमेरिका के लिए गांधीजी की एक रेडियो-वार्ता निश्चित हुई थी। कोई दस या बीस मिनट की थी। गांधीजी ब्रॉडकास्ट कर रहे थे। तीन ही मिनट शेष रहे थे तब तक गांधी जी समापन (सर्मिंग अप) नहीं कर पाये थे। ब्रॉडकास्टवालों ने धीमे से गांधीजी के सामने चिट्ठी रखकर उनका ध्यान इस ओर खींचा कि अब दो ही मिनट बचे हैं और अभी तक 'सर्मिंग अप' हुआ नहीं है। गांधीजी न तुरन्त सावधान होकर दो [illegible] मिनटों

मैं बड़ी ही खूबी के साथ इतना सुन्दर समापन किया कि सारे पत्रकारों ने मुक्त कण्ठ से उसकी सराहना की।

यह बात एक अमेरिकन पत्रकार ने मुझसे कही थी।

९८. कोलम्बिया कम्पनी के God is Truth नामक रेकार्ड का इतिहास महादेवभाई ने मुझे सुनाया था। वे लोग लन्दन में गांधीजी की स्वीकृति ले गये थे। बाद में निश्चित समय पर बापू स्टूडियो पहुँचे। समय हो चुका था लेकिन बापू की अपनी कोई तैयारी नहीं थी। इसलिए बापू ने 'यंग इण्डिया' की फाइल से God is Truth शीर्षक पैराग्राफ पढ़कर रेकार्ड करवा दिया।

अपने मूल रूप में यह रेकार्ड बहुत शुद्ध है। लेकिन चूँकि गांधीजी का मुँह पोपला था इसलिए एक-दो जगहों पर लड़खड़ाती धीमी सी आवाज सुनाई पड़ती है। बाद में इस रेकार्ड पर से दूसरी सुधरी हुई प्रतियाँ तैयार की गयी हैं लेकिन वे उतनी प्रामाणिक नहीं हैं। असल रेकार्ड ही बढ़िया है। ●

७० हरिपुरा-कांग्रेस के अवसर पर मैं गांधीजी के लिए गुजरात की मिल द्वारा बनायी गयी एक छोटी जरीदार मेज ले गया था। उसे बिस्तर पर रखकर उस पर खाने-पीने की चीजें रखी जा सकती थीं। गांधीजी ने पूछा

"क्या खुद तुमने बनायी है?"

"जी नहीं। स्वदेशी बनावट की चीज है, इसलिए लाया हूँ।"

"चाहे स्वदेशी ही क्यों न हो मैं लूँगा नहीं। खुद तुम्हारे हाथ का बना कुछ हो तो वो नहीं तो 'क्विक मार्च' करो।"

मेरा मन रखने के लिए उन्होंने केवल एक दिन उसका उपयोग किया। दूसरे दिन लौटा दी। मौन था इसलिए चिट्ठी पर लिखा

"अच्छा हुआ आ गयी। यह हरी मेज मुझे अखरती है। सेगांव में शोभा नहीं देगी। इसलिए वापस ही ले जाओ।"

इस मेज को मैंने अभी तक सँभालकर रखा है।

७१ कांग्रेस-अधिवेशन के स्थान पर एक ओर मजदूरों के निवास बने थे। इंग्लैण्ड से गांधीजी को मिलने आये पार्लमेण्ट के सिवरस नेता लॉर्ड सैम्युअल उसी तरफ घूम रहे थे। वे मजदूर-निवास देखने निकले थे। महादेवभाई या और कोई उनके साथ थे जो उन्हें सब-कुछ दिखा और समझा रहे थे।

लॉर्ड सैम्युअल ने देखा कि मजदूर-निवास में जगह-जगह कीमती हैण्ड-बैग सूटकेस और पोर्टमैण्ट आदि सामान पड़ा हुआ था। बोले

"क्या ही अच्छा हो यदि विलायत के हमारे मिल-मजदूरों को भी ऐसे बैग और सूटकेस मिल सकें।"

 गांधीजी के

असलियत यह थी कि अहमदाबाद के प्रमुख मिल-मालिक इन मजदूर-निवासों में मजदूर-नेताओं के साथ ठहरे थे। मजदूर नेताओं के साथ रहने से एक ओर लोकशाही स्थापित करने का यश मिलता है और दूसरी ओर सस्ती दरों से रहने को मिल जाता है। एक कंकड़ से दो पक्षी!

७२. मैं जब कभी सेवाग्राम जाता तो कभी-कभी वहाँ के अतिथि-घर में भी ठहरता लेकिन अधिकतर महादेवभाई के पास ही ठहरा करता। गांधीजी के कमरे में बैठता जरूर था पर बातचीत नहीं करता था। वर्धा में ११७-१८ तक की गरमी पड़ती थी। माथे पर गीली तौलिया रखने पर भी वह ५-७ मिनट में ही सूख जाती थी।

एक दिन बहुत कड़ी गरमी पड़ी। गांधीजी ने तुरन्त ही कहलवा भेजा

'आज गरमी बहुत है। दोपहर को मेरी बैठक में सोना।'

'नहीं। मुझे इतनी मालूम नहीं होती।'

गांधीजी की कुटिया के दरवाजों और खिड़कियों पर खस की टट्टियाँ लगायी जाती थीं।

७३ एक दिन गांधीजी को पता चला कि मैं आम नहीं खाता। इससे उन्हें आश्चर्य हुआ। आम न खानेवाले व्यक्तियों में तो वे अकेले एक स्वामी आनन्द को ही जानते थे। इसलिए मुझसे इतिहास पूछा। मैंने बताया

'हमारे परिवार में इसकी परम्परा है। मेरी दादी-माँ ने अपने वैधव्य के दिन से आम खाना छोड़ा। पिताजी ने मेरे छोटे भाई

पद्मकान्त की मृत्यु के बाद छोड़ा। पिताजी नहीं थे इसलिए माताजी ने छोड़ा।

मैंने सन् १९९ में छोड़ा। जिन दिनों मैं विलायत में था वहीं लीमड़ी के राजकुमार भी थे। एक बार उनके साथ चर्चा चल पड़ी। कहने लगे

"आम तो कोई छोड़ ही नहीं सकता।

'तो लो मैंने आम ही छोड़ा।

'उसी साल मेरी माताजी की मृत्यु हो जाने के कारण मैं हिन्दुस्तान वापस आया। इसके कुछ ही समय बाद विदेश-यात्रा की प्रायश्चित्त विधि करवाने के लिए मेरी दादी-माँ मुझे बनारस ले गयी। वहाँ काशी-विश्वनाथ के सामने हरएक को कुछ-न-कुछ छोड़ना पड़ता है। इसलिए विलायत में आम छोड़ने का जो निश्चय मैंने किया था काशी में उसी पर मोहर लगा दी।

७४ गांधीजी के साथ हुई मेरी इस बातचीत का पता हमारे एक बहुत नजदीकी मित्र को चला। वे सज्जन गांधीजी की मण्डली में ठठोलीबाज के रूप में प्रसिद्ध थे। कहने लगे।

'बापू ने तुम्हारे आम छोड़ने पर भले ही अचम्भा प्रकट किया हो लेकिन तुम्हारे इस आम से कहीं बड़ी और प्यारी चीज मैं काशी-विश्वेश्वर के दरबार में छोड़ आया हूँ। उसकी चर्चा करूँ तो बापू को आश्चर्य तो आश्चर्य बेहोशी आ जाय!"

कौन-सी चीज? मुझसे तो कहिये। मैं बेहोश नहीं होऊँगा।

'जानते हो मुझे अपने माता-पिता से और गांधीजी से प्यारी-से प्यारी कौन-सी चीज मिली है? सत्य! मैं उसी सत्य को

काशी के विश्वेश्वरनाथ के चरणों में छोड़ आया हूँ ! अब बताओ है कोई ऐसा जो इस त्याग में मेरी बराबरी कर सके ?

हम दोनों ठहाका मारकर हँस पड़े !

कहा जाता है कि उन्होंने यही जवाब एक बार खुद गांधीजी को भी दिया था ! मैं नहीं जानता कि उसे सुनकर गांधीजी बेहोश हुए थे या नहीं ।

७५. सेवाग्राम में बिच्छू बहुत निकला करते थे । हर दिन किसी-न-किसीको काट लेते थे । रात में जब लड़कियों को काटते तो रोना-चिल्लाना शुरू हो जाता । गांधीजी की नींद खुल जाती । वे थोड़ी दौड़-धूप करवाते और बात ठंडी पड़ती । जब तक यह न होता शायद ही कभी शान्ति हो पाती ।

७६ सेवाग्राम में गांधीजी का पत्र-व्यवहार बहुत जबरदस्त हुआ करता । बहुतेरे महत्त्व के पत्र महादेवभाई के पास रहते । उन्हें सुरक्षित रखने के लिए आलमारी आदि की कोई व्यवस्था न थी । आखिर एक बार महादेवभाई ने मुझे लिखा और गोदरेज की दो आलमारियाँ मँगवायीं । आलमारियाँ सेवाग्राम पहुँचीं । लेकिन उन्हें महादेवभाई के घर के अन्दर ले जाते और रखते समय उनकी एक 'समस्या' खड़ी हो गयी । जिस घर में महादेवभाई रहते थे वह गांधीजी की कुटिया से लगा हुआ ही था । उन्हें डर था कि कहीं गांधीजी देख लेंगे तो आपत्ति उठायेंगे कि यह सारा ठाट बाट आखिर किसके बल पर है ? लेकिन सौभाग्य से गांधीजी ने कोई खास आपत्ति नहीं की ।

इसी तरह एक बार और महादेवभाई ने डिटमार की-सी बनावटवाले पम्प करके जलाने लायक दो सफेद लैम्प के लिए

पद्मकान्त की मृत्यु के बाद छोड़ा। पिताजी नहीं खाते थे इसलिए माताजी ने छोड़ा।

मैंने सन् १९२० में छोड़ा। जिन दिनों मैं विलायत में था वहाँ मीरज के राजकुमार भी थे। एक बार उनके साथ चर्चा चल पड़ी। कहने लगे

आम तो कोई छोड़ ही नहीं सकता।

तो लो मैंने आज ही से छोड़ा।

उसी साल मेरी माताजी की मृत्यु हो जाने के कारण मैं हिन्दुस्तान वापस आया। इसके कुछ ही समय बाद विदेश-यात्रा की प्रायश्चित्त विधि करवाने के लिए मेरी दादी-माँ मुझे बनारस ले गयी। वहाँ काशी विश्वनाथ के सामने हरएक को कुछ-न-कुछ छोड़ना पड़ता है। इसलिए विलायत में आम छोड़ने का जो निश्चय मैंने किया था काशी में उसी पर मोहर लगा दी।

७४ गांधीजी के साथ हुई मेरी इस बातचीत का पता हमारे एक बहुत नजदीकी मित्र को चला। ये सज्जन गांधीजी की मण्डली में ठठोलीबाज के रूप में प्रसिद्ध थे। कहने लगे।

बापू ने तुम्हारे आम छोड़ने पर भले ही अचम्भा प्रकट किया हो लेकिन तुम्हारे इस आम से कहीं बड़ी और प्यारी चीज मैं काशी विश्वम्भर के दरबार में छोड़ आया हूँ। उसकी चर्चा करूँ तो बापू को आश्चर्य तो आश्चर्य बेहोशी आ जाय!

कौन-सी चीज? मुझसे तो कहिये। मैं बेहोश नहीं होऊँगा।

जानते हो मुझे अपने माता-पिता से और गांधीजी से प्यारी-से प्यारी कौन-सी चीज मिली है? सत्य! मैं इसी सत्य को

मैंने उसे महादेवभाई के पास भेज दिया और लिखा "इसे देखकर आपको हँसी आयगी।" महादेवभाई ने वह पत्र गांधीजी को दिखा दिया!

गांधीजी ने फॉस्टर एण्ड्रिल को पत्र लिखवाया "आपको ये शराब की पार्टियां क्यों दी जा रही हैं? ऐसी पार्टियों में आपको नहीं जाना चाहिए।"

इस पर बहुत लम्बा पत्र-व्यवहार चला। श्री महादेवीर पटेल एण्ड्रिल के मित्र थे। उन्होंने मुझसे पूछा

"तुमने यह क्या कर डाला?"

मैंने तो सिर्फ कॉकटेल-पार्टी का कार्ड केवल विनोद के विचार से महादेवभाई को भेज दिया था। साथ कुछ लिखा नहीं था।

३९. प्रसिद्ध अमेरिकन पत्रकार और लेखक लुई फिशर एक बार गरमियों में सेवाग्राम पहुँचे थे। उन दिनों गांधीजी ने उन्हें सुझाया था कि वे दोपहर की कड़ी गरमी से बचने के लिए उस समय रोज पानी के टब में बैठा करें। तदनुसार वे टब में बैठे रहते थे और टब की किनार पर आड़ी पटिया रखकर उस पर अपना टाइप-राइटर रख लेते थे और इसी हालत में सारा समय अपनी टिप्पणियां और लेख टाइप किया करते थे। उन्होंने A Week with Gandhi (गांधी के साथ एक सप्ताह) नामक अपनी पुस्तक इसी तरह टाइप करके तैयार की थी।

४०. अपनी एक वर्षगांठ के अवसर पर मैंने सदा की भांति गांधीजी को प्रणामसूचक पत्र लिखा। साथ में महादेवभाई के नाम अपनी में पत्र लिखवाया। जब बम्बई पहुँचकर महादेवभाई ने दोनों पत्र उन्हें दिखाये तो गांधीजी खिलखिलाकर हँस पड़े।

कनुभाई ने उनके उस मुक्त हास्य का एक फोटो खींचा था जो बहुत प्रसिद्ध हो चुका है। गांधीजी ने मुझे लिखा

'एक मुझीको गुजराती में और महादेव को अंग्रेजी में क्यों? गुजराती का अभ्यास रखने से अक्षर और भाषा दोनों सुधरेंगे। बहुत ही जल्दी हुआ करे तो अपने गुजराती पत्र किसी गुजराती कारकुन से लिखवा लिया करो। जो कमी रह गयी है उसे प्रयत्न पूर्वक दूर कर लेना चाहिए।'

८१ सेवाग्राम में आश्रम के सामूहिक रसोई-घर के अलावा महादेवभाई, किशोरलालभाई जैसे एक-दो के घर पर ही अलग से रसोई बनती थी। बड़े रसोई-घर में रसोई सादी और मामूली बना करती थी। नमक जरूरत के अनुसार अलग से दिया जाता था। मैं दोपहर को बड़े भोजनालय में और शाम को महादेवभाई के साथ भोजन करता था। जब कोई प्याज परोसनेवाला मेरे पास पहुँचता तो गांधीजी उससे कहते "ये प्याज नहीं लेते। ये बा की जाति के हैं"

एक बार श्री मणिलाल गांधी दक्षिण अफ्रीका से आये थे। उन दिनों नमक और मसाले के बारे में लम्बी चर्चाओं के बाद थोड़ी छूट दी गयी थी लेकिन वह कुछ ही दिन चली।

८२ बड़े भोजनालय में भोजन करनेवालों को प्रतिदिन आश्रम के बगीचे के फल मिला करते थे। ज्यादातर अमरूद मिलते थे। एक दिन एक लड़का अपने हिस्से का अमरूद खा रहा था बिलकुल कच्चा। उसने गांधीजी को दिखाया। गांधीजी बोले

"कोई हर्ज नहीं। ओवर रसोई-घर में चौके के सामने रख दे शाम तक पक जायगा"

गांधीजी के

भोज में सम्मिलित होने के लिए न्योता था। वे जानते थे कि दाल-बाटी का मुझे बहुत शौक है। भोजन के बाद काकाजी (जमनालालजी) ने हम सबको इकट्ठा करके गो-सेवा-संघ के उद्देश्यों और कार्यक्रम को समझाते हुए एक खासा लम्बा भाषण दिया। बाद में बोले

'कहिए अब आप लोगों में से कौन-कौन संघ के सदस्य बनने को तैयार हैं ?

परिवार के और निमंत्रित भी सब मिलाकर कुल १०-१२ लोग वहाँ मौजूद थे। किन्तु उनके ज्येष्ठ पुत्र कमलनयनजी सहित कोई भी ऐसा न था जो सदस्यता की प्रतिज्ञा लेने को तैयार हो।

यह देखकर काकाजी थोड़े उदास-से हो गये। मैंने कहा

'अगर एक साल के लिए सदस्य बना सकते हों तो मैं आपके संघ का सदस्य बनने को तैयार हूँ।

दीवाली के दिन थे। काकाजी खुश हुए।

घर आने पर मैंने अपनी पत्नी से चर्चा की। वे बोलीं

'इसमें कौन बड़ा गढ़ जीतकर आये हो? दूध दही मक्खन और इनसे बनी चीजों के प्रति तो आपको जन्म से ही अरुचि रही है। आपके समान लोग इस प्रकार का व्रत लें और संघ के सदस्य बनें उससे गायों का दूध कभी बढ़नेवाला नहीं है।

बाद में काकाजी के आग्रह के कारण उनसे पत्र-व्यवहार करके मैं स्थायी सदस्य भी बन गया था। लेकिन उसमें शर्त यह रखी थी कि किसी भी समय किसी अनिवार्य कारण से मैं त्याग-पत्र दे सकूँगा। काकाजी ने अपने पत्र में इसके लिए स्वीकृति लिख भेजी थी।

जमनालालजी की गो-सेवा

दाल-बाटी की गोठ

८४ अपनी मृत्यु से कुछ पहले के अन्तिम वर्षों में जमनालालजी ने गो-सेवा का काम अपनाया था। गांधीजी के मार्ग-दर्शन में अखिल भारत गो-सेवा-संघ की स्थापना करके वे अनन्य भाव से संघ का काम करने लगे थे। उन्होंने नालवाड़ी गाँव के निकट गो-पुरी नामक बस्ती बसायी थी और खुद भी वहीं रहने लगे थे। स्वयं उन्होंने गाय के ही दूध घी चमड़े आदि का उपयोग करने का व्रत लिया था और वे दूसरों को भी ऐसा व्रत लेने के लिए समझाया करते थे। अपने आने-जाने के लिए भी वे बैलगाड़ी का ही उपयोग करते थे। वर्धा में रहते हुए कभी मोटर में नहीं बैठते थे।

गांधीजी की सलाह से उन्होंने जिस गो-सेवा-संघ की स्थापना की थी उसके सदस्य बननेवाले को गाय का ही घी-दूध खाने और अपनी मौत मरे गाय-बैल के ही चमड़े का उपयोग करने की प्रतिज्ञा लेनी होती थी। इन प्रतिज्ञाओं का पालन कठिन था इसलिए संघ के सदस्य अधिक नहीं बनते थे। किन्तु जमनालालजी कभी हारते न थे। संघ के सदस्य बनाने का प्रयत्न बराबर करते रहते थे।

एक बार जयपुर में हमारे पड़ोस में रहनेवाले रूइया-परिवार के घर वे दाल-बाटी की गोठ में आये थे। जमनालालजी ने मुझे

मार्ग में सम्मिलित होने के लिए न्योता था। वे जानते थे कि दाल-बाटी का मुझे बहुत शौक है। भोजन के बाद काकाजी (जमनालालजी) ने हम सबको इकट्ठा करके गो-सेवा-संघ के उद्देश्यों और कार्यक्रम को समझाते हुए एक खासा लम्बा भाषण दिया। बाद में बोले

'कहिए, अब आप लोगों में से कौन-कौन संघ के सदस्य बनने को तैयार हैं?'

परिवार के और निमंत्रित भी सब मिलाकर कुल १०-१२ लोग वहाँ मौजूद थे। किन्तु उनके ज्येष्ठ पुत्र कमलनयनजी सहित कोई भी ऐसा न था जो सदस्यता की प्रतिज्ञा लेने को तैयार हो।

यह देखकर काकाजी थोड़े उदास-से हो गये। मैंने कहा

'अगर एक साल के लिए सदस्य बना सकते हों तो मैं आपके संघ का सदस्य बनने को तैयार हूँ।'

दीवाली के दिन थे। काकाजी खुश हुए।

घर आने पर मैंने अपनी पत्नी से चर्चा की। वे बोलीं

"इसमें कौन बड़ा गढ़ जीतकर आये हो? दूध, दही, मक्खन और इनसे बनी चीजों के प्रति तो आपको जन्म से ही अरुचि रही है। आपके समान लोग इस प्रकार का व्रत लें और संघ के सदस्य बनें, उससे गायों का दूध कभी बढ़नेवाला नहीं है।"

बाद में काकाजी के आग्रह के कारण उनसे पत्र-व्यवहार करके मैं स्थायी सदस्य भी बन गया था। लेकिन उसमें शर्त यह रखी थी कि किसी भी समय किसी अनिवार्य कारण से मैं त्याग-पत्र दे सकूँगा। काकाजी ने अपने पत्र में इसके लिए स्वीकृति लिख भेजी थी।

इसके कुछ ही समय बाद जमनालालजी का अकस्मात् स्वर्गवास हुआ। गांधीजी ने मुझे संघ का उपाध्यक्ष बनाया।

बाद में जब सन् १९४६ में इंग्लैण्ड-अमेरिका जाने का मेरा कार्यक्रम बना तो मैंने संघ की सदस्यता से अपना त्याग-पत्र भेज दिया। वैसे विदेशों में गाय के घी दूध और मक्खन की कोई कठिनाई नहीं होती क्योंकि इंग्लैण्ड और अमेरिका में भैंसें होती ही नहीं। लेकिन वहां कुदरती तौर पर मरे गाय-बैल के ही चमड़े के जूतों का और दूसरी चीजों के उपयोग का नियम पाला नहीं जा सकता था। इसलिए मैंने त्याग-पत्र भेज दिया।

क्योंकि जमनालालजी रहे नहीं थे इसलिए त्याग-पत्र गांधीजी के पास पहुंचा।

'तुम आजीवन सदस्य हो। त्याग-पत्र नहीं दे सकते।'

'जी, सदस्य बनते समय जमनालालजी के साथ मैंने यह तय कर लिया था कि मैं जब चाहूं तब त्याग-पत्र दे सकूंगा।'

गांधीजी को इस बात की कोई कल्पना नहीं हो सकती थी कि जमनालालजी ऐसी कोई रियायत करेंगे।

'जमनालालजी तो जीवित हैं नहीं। तुम्हारे पास कुछ लिखा हुआ है?'

उस समय हमारे बीच जो पत्र-व्यवहार हुआ था सो मैंने गांधीजी को दिखाया। उन्हें आश्चर्य हुआ।

बाद में मैंने गांधीजी को शुरू की दाल-बाटीवाली गोठ का सारा इतिहास सुनाकर बताया कि मैं किस तरह 'फंसा' था और सदस्य बना था। फिर मैंने कहा

'प्रत्येक मनुष्य में किसी-न-किसी प्रकार की कोई कमजोरी होती ही है और उसमें वह कभी-न-कभी अमुक रीति से फंसता

गांधीजी के

है। खाने की चीज़ों में बाटी ही मेरी एकमात्र कमज़ोरी है। इस तरह उसने मुझे संघ की सदस्यता में 'फँसा लिया था'।

गांधीजी खिलखिलाकर हँसे। कहने लगे

"इस फन्दे में पड़कर तुमने गाय की सेवा की सो एक लाभ ही हुआ न?"

८५. नियम यह था कि गो-सेवा-संघ के सदस्यों को गाय का ही घी-दूध खाने का व्रत लेना चाहिए। वे दूसरा कोई घी-दूध या दूध से बननेवाले पदार्थ खा नहीं सकते। मैं गो-सेवा-संघ का सदस्य था। गांधीजी अपनी बकरी के दूध की बनी चीज़ें सबको बाँटा करते थे। एक दिन मुझे भी देने लगे। मैंने इनकार किया। कहा 'मैं गो-सेवा-संघ का सदस्य हूँ। मैं बकरी के दूध की बनी चीज़ें नहीं खा सकता।' नहीं नहीं बल्कि आप हमारे संघ के सदस्य बनना चाहें, तो भी आपके लिए तो संघ के दरवाज़े बन्द ही रहेंगे। जब तक आप गाय का घी-दूध न खायें हम आपको भी अपने संघ का सदस्य नहीं बना सकते।

सब ठहाका मारकर हँस पड़े।

८६. इस गो-सेवा-संघ की स्थापना के पीछे समय बाद कुछ मित्रों ने गायों की नस्ल सुधारने के लिए ऊँची नस्ल के सांडों का पालन करनेवाले एक 'वृषभ-सुधार मण्डल' की स्थापना का काम हाथ में लिया।

इस सम्बन्ध की चर्चा के चलते मैंने कहा कि लोग 'वृषभ सुधार' नाम समझेंगे नहीं। वृषभ के बदले दूसरा कोई सरल नाम रखना ठीक होगा। 'गो-वंश-सुधार-समाज' या ऐसा ही कोई नाम रखिये। 'गोपति-सुधार' भी सुझाया गया और उस पर लोग खूब

हँसे। 'नन्दी-कुमार' का सुझाव भी आया। राजाजी ने कहा : नन्दी ब्रह्मचारी था। आजीवन वहीं रहकर उसने अन्तेवासी के रूप में शिवजी की सेवा की थी। ऐसे नन्दी को गायों की नस्ल सुधारनेवाले कुलीन सांड के रूप में कैसे रखा जाय ?

अन्त में 'वृषभ-कुमार' ही रहा।

८७ एक बार गांधीजी जुहू के समुद्र-तट पर 'जानकी-कुटीर' में रहते थे। वहाँ कांग्रेस की वर्किंग कमेटी की बैठक चल रही थी। एक दिन एक आदमी एक मोटे-से नन्दी के साथ डमरू बजाता हुआ आया। 'भोलानाथ' नाम का यह नन्दी उन दिनों चारों ओर मशहूर हो चुका था और उसका रक्षक स्वामी उसे लेकर सर्वत्र घूमता था। दक्षिण में इस प्रकार के नन्दियों को लेकर घूमनेवाले भिक्षुओं की एक जमात ही पायी जाती है। नन्दी के बदन पर बढ़िया लाल रंग की झूल पड़ी थी और उस पर रंग-बिरंगे कपड़ों के टुकड़े टँके थे। गले में छोटे घुँघरू और कौड़ियों की मालाएँ थीं। रक्षक डमरू बजाकर लोगों की भीड़ इकट्ठा करता था और लोगों से कहता था कि उन्हें कोई सवाल पूछने हों तो 'भोलानाथ' से पूछें और भोलानाथ था कि सिर हिलाकर सवालों के अनुरूप उत्तर देता था।

इधर उस दिन की वर्किंग कमेटी की बैठक पूरी हुई और उधर फाटक के सामने से 'भोलानाथ' गुजरा। स्वर्गीय जमनालाल जी को इस प्रकार की बातों में बड़ी दिलचस्पी थी। उन्होंने उस रक्षक को नन्दी के साथ अहाते में बुलाया। कमेटी के सब सदस्य नेता बाहर निकल आये और 'भोलानाथ' को घेरकर खड़े हो गये। रक्षक ने कहा :

आपको जो पूछना हो पूछिए।

'गरीब मर !

जमनालालजी 'भोलानाथ' से सवाल पूछने लगे

'कहो भोलानाथ ! ये जितने लोग यहाँ खड़े हैं उनमें गांधीजी सबसे ज्यादा किसको चाहते हैं ?

भोलानाथ ने सब बताया कि सामने से गुजरकर पहले एक चक्कर लगाया। फिर जवाहरलालजी के सामने आकर खड़ा रहा!

कुछ दिनों के बाद सब बिखर गये। गांधीजी वर्धा पहुँचे। इसके बाद एक दिन वर्धा से जमनालालजी का एक तार मेरे नाम आया

'भोलानाथ का खरीद लो और फौरन वर्धा भेजो।

तार की भाषा बिलकुल स्पष्ट थी। पर विश्वास नहीं होता था कि जमनालालजी ऐसी कोई माँग करेंगे। दैवयोग से उस समय महादेवभाई बम्बई में थे। मैंने उनसे चर्चा की। कहने लगे

"जमनालालजी को तो कोई भी नया पशु प्राणी अथवा कोई अद्भुत चीज मिल जाती है तो बस एक ही धुन रहती है उसे वर्धा पहुँचाने की। और तो और, तुम तो यही समझो न कि वे गांधीजी को भी एक महान् प्राणी का नमूना मानकर ही साबरमती से वर्धा उठा ले गये हैं !!!

मुझे तो पक्का विश्वास और पता था कि बन्दी अपने रक्षक का सिखाया हुआ होता है। यदि बिना रक्षक के अकेले बन्दी को कोई खरीदे या ले जाय तो वह उसके मत्थे ही पड़ रहे। गुरु बन्दी में अपनी कोई करामात नहीं होती।

मैंने उस खरीदने की कोई कार्रवाई नहीं की और कुछ ही दिनों में बात आयी-गयी हो गयी!

८८ जमनालालजी के अवसान के कोई १ १२ दिन पहले मैं वर्धा में उनके प्रसिद्ध अतिथि-गृह वाले बँगले में ठहरा हुआ था।

बम्बई के दूसरे दो-तीन मित्र भी मेरे साथ रहते थे। जमनालालजी गोपुरी से बंगले पर आये थे। लौटते समय उन्होंने हम सबसे पूछा

"मेरे साथ गोपुरी कौन चलता है?"

कोई तैयार नहीं हुआ। यह देखकर मैं तैयार हो गया। उस शाम और रात भी मैं उन्हींके साथ रहा। बहुत खुश हो गये। वे बड़े सवेरे उठकर घूमते समय गाय को अपने हाथों खिलाते पुचकारते और सहलाते थे।

बम्बई लौटकर मैंने ५ फरवरी के दिन उन्हें एक आभार सूचक पत्र लिखा। उत्तर में ९ फरवरी को उन्होंने मुझे लिखा

"आभार के पत्र की कोई आवश्यकता नहीं थी। उलटे मेरे यहाँ तुमको कष्ट ही हुआ होगा। लेकिन मैं तो तुम्हें घर का आदमी समझता हूँ इसलिए मैंने उस तरफ ध्यान देने की जरूरत नहीं समझी और आज भी नहीं समझता।

अपने ही दिन वे चल बसे।

८९. लड़ाई के वर्षों में चीन के उस समय के मुखिया च्यांग-काई-शेक कलकत्ते आये थे। वे गांधीजी से मिलना चाहते थे। इसलिए गांधीजी कलकत्ते गये। मिलकर तुरन्त ही सेवाग्राम लौट आये। क्योंकि जमनालालजी का अभी हाल ही देहान्त हुआ था। जब से गांधीजी कलकत्ते गये तभी से हम च्यांग-काई-शेक् के बारे में उनकी राय जानने को बहुत उत्सुक थे। उनके लौटने के तुरन्त बाद हम सब उनकी कुटिया में घुसे और उनसे च्यांग-काई-शेक के बारे में पूछा। गांधीजी ने कहा

'मुझे उनकी हिन्दुस्तान-यात्रा के मूल में राजनीतिक मिशन (हेतु) की गंध आती है। मेरा तो खयाल है कि हिन्दुस्तान को

लड़ाई में घसीटने के लिए 'अलाइज़'—ब्रिटेन और मित्र राष्ट्रों—ने ही उन्हें यहाँ भेजा है।

१० जिन दिनों गांधीजी कलकत्ता गये थे उन्हीं दिनों सुप्रसिद्ध बंगाली साध्वी आनन्दमयी देवी गोपुरी (वर्धा) आयी थीं। जमनालालजी को साधु-सन्तों में बड़ी आस्था थी। उन्होंने गांधीजी के साथ मिलाप कराने के लिए आनन्दमयी देवी को आग्रहपूर्वक सेवाग्राम आने का आमंत्रण दिया था। दुर्भाग्यवश वे जमनालालजी के अवसान के बाद ही आ सकीं। गोपुरी में माता जानकीदेवी ने पति की मृत्यु के बाद संकल्पित दान-पुण्य की सारी धन-राशि और गायें आदि सब-कुछ मैया आनन्दमयी को अर्पित कर दिया। गांधीजी सेवाग्राम में थे नहीं इसलिए उन्हें आग्रहपूर्वक रोका। जब तक गांधीजी के साथ भेंट अभी न हुई, उन्हें जाने न दिया। एक-दो दिन के बाद गांधीजी कलकत्ता से लौटे। माता जानकी-देवी की इच्छा थी कि गांधीजी गोपुरी आयें। मैया ने कहा

'वे उम्र में बड़े हैं इसलिए हमारे जाने में कोई हर्ज नहीं।'

गांधीजी की अनुमति प्राप्त करने के बाद जानकीदेवी के साथ सारा दल गांधीजी से मिलने के लिए सेवाग्राम रवाना हुआ। शाम की प्रार्थना के बाद लगभग १½ घण्टे तक गांधीजी की और मैया की मुलाकात चली। गांधीजी के हम सब अन्तेवासी वहीं रहे। कुटिया खचाखच भर गयी थी।

लेकिन बातचीत में कोई तालमेल नहीं। वे किसी प्रकार की कोई गम्भीर चर्चा शुरू ही न करती थीं। न पूछती थीं न जवाब देती थीं। सब कुछ हँसकर ही टाल दिया करती थीं।

'आप सब जानते हैं। मुझसे क्या पूछते हैं?'

जिन दिनों मैया भोपुरी में थीं उनसे मिलने के लिए विनोबा जी भी पवनार से आये थे। उन्होंने भी अपने सदा के अत्यन्त नम्र भाव से उनसे कुछ सवाल पूछे। लेकिन उन्हें भी इसी तरह हँसकर टाल दिया।

'आप सब जानते हैं मुझसे क्या पूछते हैं?"

बस यही था 'अच्युतम् केशवम्'! इसमें से बहुतों पर उनकी कोई छाप नहीं पड़ी।

—

९१ कलकत्ते जाने से पहले गांधीजी ने जमनालालजी की श्राद्ध तिथि के दिन रचनात्मक काम में लगे देश के प्रमुख कार्यकर्ताओं को वर्धा बुलाया था। प्रत्येक प्रान्त के सेवक जिनसे स्वर्गीय जमनालालजी कुटुम्बी का-सा सम्बन्ध रखते थे वर्धा आये और सत्याग्रहाश्रम में उनकी एक सभा हुई। स्वर्गीय जमनालालजी की पत्नी श्रीमती जानकीदेवी बजाज भी इस शोक-सभा में आयी थी और लम्बा-सा घूँघट निकालकर गांधीजी के पास बैठी थीं। बाद में गांधीजी के कहने पर उन्होंने अपना घूँघट थोड़ा हटाकर ऊपर कर लिया था।

गांधीजी ने कहा:

"अब स्त्रियों का आदर्श बदल चुका है। पहले की तरह अब स्त्रियों की पति-भक्ति की कसौटी पति के साथ सती होने में नहीं बल्कि पति द्वारा प्रारम्भ किये गये कामों का उनकी भक्ति और निष्ठा के साथ चलाने में और पूरा करने में है। इस विचार को हृदयंगम करके उसका अनुसरण करना चाहिए।

[illegible] स्त्रियों की सभा को सम्बोधित करते हुए गांधीजी ने कहा था

गांधीजी के

"मुझे पैसों की जरूरत नहीं है। पैसे तो निष्ठापूर्वक किये गये काम के पीछे-पीछे आ ही जाते हैं। मुझे तो जमनालाल के समान कार्यकर्ताओं की ही जरूरत है। उनके समान शक्तिमान् और एकनिष्ठ तो मुश्किल से ही मिलेंगे। किन्तु उनसे कुछ कम भी हुए तो चलेंगे। केवल पैसों को मैं क्या करूँ ? बिना आदमी के पैसा निकम्मा है—केवल बोझ-रूप है।"

गांधीजी ने कार्यकर्ताओं के साथ गो-सेवा-संघ की और जिन दूसरे रचनात्मक कामों की संस्थाओं आदि को जमनालालजी चलाया करते थे उनकी व्यवस्था के बारे में चर्चा की। गो-सेवा संघ का काम माता जानकीदेवी बजाज को सौंपा गया और दूसरे विभिन्न कामों को चलाने के लिए योग्य कार्यकर्ता पसन्द किये गये।

इस गम्भीर अवसर पर एक बहुत ही विनोदपूर्ण घटना घटी। स्वर्गीय जमनालालजी ने छोटे-से-छोटे ग्राम-सेवक और कार्यकर्ता के साथ आत्मीयता का नाता रखा था। वे सबके साथ अत्यन्त निकट का पारिवारिक सम्बन्ध रखने का प्रयत्न करते थे और उनकी घर-गृहस्थी बीमारी बच्चों की शिक्षा और लड़के-लड़कियों की सगाई शादी की व्यवस्था में गहरी रुचि लेते थे और चिन्ता रखते थे। जमनालालजी के ज्येष्ठ पुत्र कमलनयन बजाज बड़े विनोदी हैं। उन्होंने गांधीजी से कहा :

"आपने काकाजी के सब कामों की तो व्यवस्था लगा दी। लेकिन उनका एक 'पोर्टफोलियो' बच गया है।

"कौन-सा ?

"शादीलाल का।

"किस तौर् ?

"शान्तिकुमार की।

यह मंजिल क्यों बढ़ायी ?

सुननेवालों में से बहुतेरे अपनी हँसी रोक न सके। उन्होंने शाम के उस गम्भीर वातावरण को बिलकुल हलका बना दिया। इस हँसी-विनोद के बीच शोक-सभा विसर्जित हुई।

१८. सन् १९४२ के अगस्त में जब कांग्रेस की महासभा का अधिवेशन बम्बई में हुआ था गांधीजी बिड़ला-हाउस में ठहरे थे। अगस्त को दोपहर को महासभा की बैठक में जाने से पहले गांधीजी ने वर्धा की गोपुरी नामक बस्ती के बारे में चर्चा की। वहां जिस जगह जमनालालजी कुटिया बनाकर रहे थे उसी जगह एक पक्का मकान बनवाकर जानकीदेवी उसमें स्थायी रूप से रहनेवाली थी। चूंकि मैं गो-सेवा-संघ का उपाध्यक्ष था इसलिए निर्माण-काम की जिम्मेदारी मुझे सौंपी गयी थी। अतएव महासभा के अधिवेशन में जाने से पहले मैंने गांधीजी को उस मकान का प्लान दिखाया। उन्होंने उसे पास किया और मैंने तदनुसार निर्माण-काम शुरू करने की सूचना वर्धा भेजी। बाद में जब मकान बनकर तैयार हुआ तो पता चला कि वह गांधीजी द्वारा पास किये गये प्लान के अनुसार नहीं था। माता जानकीदेवीजी के कहने से उनके भतीजे श्री राधाकृष्णजी बजाज ने उस पर एक मंजिल और बढ़ा दी थी। बाद में जब सन् १९४४ में आगा खान-महल के जेल से छूटकर गांधीजी पहली बार सेवाग्राम पहुँचे तो उन्होंने गोपुरी में जानकीबहनजी का मकान देखा और मुझसे पूछा

— यह मंजिल क्यों बढ़ायी

१८

'क्विट इण्डिया'—पहला बलिदान

'आमीन !'

१४ जिन दिनों सन् १९४२ की 'क्विट इण्डिया' लड़ाई के बादल घिर रहे थे, उन्हीं दिनों इस सारे प्रश्न पर विचार-विमर्श करने के लिए गांधीजी के पास एक महत्व की बैठक हुई थी। ब्रिटिश साम्राज्य को हिन्दुस्तान छोड़कर जाने की बात कहनेवाले किसी ऐसे शब्द की खोज में गांधीजी सहित सब कोई लगे हुए थे कि जो चोखा भी हो और जो आसानी से आम लोगों की ज़बान पर चढ़ जाय। चर्चा में अलग-अलग शब्द सुझाये गये। किसीने कहा Get out। गांधीजी बोले [illegible] उसमें अविनय भरा है। सम्भवतः राजाजी ने [illegible] अथवा Withdraw शब्द सुझाया था। गांधीजी ने कहा [illegible] Orderly Withdrawal पर पूरी तरह सन्तुष्ट करनेवाला कोई शब्द किसीको मिला नहीं। इसके कुछ दिन बाद जब गांधीजी बम्बई आये तो स्वर्गीय भाई यूसुफ मेहरअली उनसे मिलने [illegible]। वे गांधीजी को [illegible] के लिए अपने साथ एक बिल्ला बनवाकर [illegible] थे। उस पर लिखा था :

Quit India

[illegible] प्रयोग एकदम जँच गया। बोले

गांधीजी के

१ बम्बई के गोवालिया-टैंक पर हुई महासभा-समिति की सन् १९४२ की उस बैठक के दिनों में एक दिन अधिवेशन में जाने के लिए रवाना होने से पहले मौलाना साहब, पं० जवाहरलालजी और गांधीजी बिड़ला-हाउस में बातें कर रहे थे।

मौलाना : 'स्वराज' में कांग्रेस की पोजीशन क्या रहेगी ?"

गांधीजी : कांग्रेस को तो हमेशा सरकारी तंत्र के बाहर रहकर जनता के हित के लिए सरकार पर दबाव डालते रहना चाहिए।

जवाहरलाल : "मेरे खयाल में कांग्रेस को सत्ता अपने हाथ में लेकर जनता का हित सिद्ध करना चाहिए।"

१६ महासभा-समिति की बैठक के अन्तिम दिनवाले अधिवेशन में महादेवभाई ने मुझसे पूछा था :

'कल अधिवेशन से जाने के बाद तुम शाम को बिड़ला-हाउस क्यों नहीं आये ?'

'देर बहुत हो चुकी थी, इसीलिए नहीं आया।'

'आज जरूर आना।'

लेकिन उस दिन तो महासभा-समिति में 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव पास हुआ और अधिवेशन पिछले दिन से भी ज्यादा देर में पूरा हुआ। इसलिए मैं सीधा घर ही चला गया।

गांधीजी ने महासभा-समिति के सदस्यों को दूसरे दिन सवेरे बिड़ला-हाउस बुलाया था। मैं तड़के ही उठकर बिड़ला-हाउस पहुंचा। जाकर देखा तो पता चला कि गांधीजी गिरफ्तार हो चुके थे!

महासभा-समिति के सदस्यों को नेताओं की गिरफ्तारी का पता नहीं था, इसलिए पिछली रात की सूचना के अनुसार वे तो

किशोरलालभाई ने उन्हें यह समझाया कि यह चीज हिन्दू-संस्कार के विरुद्ध है तो उन्होंने ऐसा करना छोड़ दिया। एक पुरानी प्रथा के अनुसार हिन्दुओं में चिता-भस्म केवल उज्जैन के ज्योतिर्लिङ्ग महादेव महाकालेश्वर पर ही चढ़ती है और दर्शनार्थियों अथवा यात्रियों को प्रसादी के रूप में दी जाती है।

१९. महादेवभाई के करुण अवसान के बाद बापू के पास मंत्री का काम करनेवाला कोई न रहा। इसलिए सबसे पहले मैंने ही सरकार को सुझाया कि वह प्यारेलाल को अथवा किशोरलाल भाई को उनके पास भेज दे। बाद में तो दूसरे भी कई लोगों ने सरकार को इसी आशय के सुझाव भेजे। आखिर सरकार को ये सुझाव मानने पड़े और उसने प्यारेलालजी को दूसरे जेल से बदलकर आगा खान-महल में भेज दिया। ●

छोटे-बड़े नेता और कांग्रेस के कार्यकर्ता जेलों में बन्द थे। इधर बाहर समूचे देश में एक ही साथ अहिंसक अण्डरग्राउण्ड और तोड़फोड़ आदि की हलचलें चल रही थीं। इस सम्बन्ध में गांधीजी के साथ मेरी जो बातचीत हुई, उसका सार इस प्रकार है :

कुशल-क्षेम पूछने के बाद बापू ने मुझे अधिक पास बुलाकर बड़ी क्षीण आवाज में कहा :

'इस उपवास के समय में मुझसे मिलने आनेवालों पर बातचीत-सम्बन्धी किसी तरह की पाबन्दी नहीं रहेगी। सरकार ने मेरी यह मांग अब मंजूर कर ली है। इसलिए जो भी कहना हो बेधड़क कहो। हमारी इस बातचीत का सार मित्रों को भी सुना सकते हो। सिर्फ अखबारों में देने की मनाही समझो।'

मैंने कहा : 'बम्बई में कांग्रेस के बिना कोई ६ अण्डरग्राउण्ड (भूगर्भ) मण्डलियां काम कर रही हैं और उन्होंने यह एलान भी कर रखा है कि कांग्रेस के साथ उनका कोई सम्बन्ध नहीं है। कांग्रेस ने भी अपने बुलेटिनों में घोषित किया है कि तोड़-फोड़ के हिंसक काम करनेवाले ऐसे मण्डलों के साथ उसका कोई सम्बन्ध नहीं है।'

गांधीजी ने कहा : 'किसीको भी मेरे नाम से कोई हिंसक काम करना ही न चाहिए। आज अहिंसा को माननेवाले चार आदमी भी हों तो उनके चार सौ हो जायेंगे और एक दिन चालीस करोड़ होंगे।

'मैं तो मानता हूं कि हमें यह लड़ाई पांच, दस अथवा पचीस साल तक भी लड़नी पड़ जाय।

'तार, रेल आदि पर कब्जा करने का काम दो-तीन सौ आदमियों की मदद से ही किया जा सकता है। और सो भी पहले

से यथोचित नोटिस देने के बाद ही किया जाना चाहिए। उसमें भी जान-माल का नुकसान होता हो तो वह हिंसा ही मानी जायगी इसलिए ऐसे काम खास तौर पर टालने चाहिए।

११ एक बार जेल में गांधीजी को थॉम्पसन की 'हाउण्ड ऑफ् हेवन (Hound of Heaven) नामक पुस्तक की जरूरत पड़ी। मेरे पास खबर आयी। बम्बई में कहीं भी मिलती न थी। पुस्तकों के निजी पुस्तकालयों में शायद किसीके पास मिल जाय इस विचार से खोज शुरू की। इण्डियन मर्चेण्ट्स चेम्बर के मंत्री श्री जमनादास मेहता के पास मिली। मैंने तुरन्त गांधीजी के पास भेज दी। गांधीजी को वह बहुत पसन्द आयी। वे इस काव्य की चर्चा सबसे किया करते थे।

इस काव्य में कवि ने उसे जो ईश्वरीय साक्षात्कार हुआ था उसका और उसके परिणामस्वरूप अपने जीवन में हुए परिवर्तन का वर्णन किया है। इसलिए समझने में कठिन है। राजाजी ने इस पर एक छोटी-सी टीका लिखकर इसके अर्थ को समझना आसान कर दिया है। यदि मैं भूलता नहीं हूँ तो श्री जमनादास भाई ने बाद में राजाजी की इस टीका के साथ उक्त काव्य की एक छोटी आवृत्ति छपवाकर मित्रों में बाँटी थी।

महज श्री जमनादासभाई का यह आग्रह रहा कि इस काव्य की जो प्रति गांधीजी को भेजी गयी थी जिसके 'मार्जिन' (हाशिये) पर गांधीजी ने अपने हाथों टिप्पणियाँ लिखी थीं एक स्मरण के रूप में मार्गदर्शन के लिए वह उन्हें वापस मिलनी चाहिए। लेकिन जब वह प्रति नहीं मिली तो वे मुझ पर नाराज हुए थे और उनका इस तरह नाराज होना मुनासिब ही था।

गांधीजी के

मैंने भी उसके लिए बहुत पूछताछ की थी। पर अब याद नहीं पड़ता कि आखिर वह मिली थी या नहीं।

१०२. आगा खान-महल के जेल-वास के दिनों में बा बापू, प्यारेलालजी आदि के लिए आवश्यक चीज-वस्तु भेजने के सिलसिले में सरकार के साथ लम्बा पत्र-व्यवहार करके मैंने अपना अधिकार सिद्ध कर लिया था। गांधीजी अपनी जरूरत की छोटी-मोटी हर चीज मँगवाते थे। बाद में तो यह प्रथा ही पड़ गयी कि दूसरों को भी आगा खान-महल में कोई चीज भेजनी हो तो वे उसे मेरे पास भेज दिया करते थे। माना यह जाता था कि मेरे पास पहुँचाने से सामान आगा खान-महल में पहुँच ही जायगा। सभी प्रेमलीला और स्वामी आनन्द भी सामान भेज सकते थे। क्योंकि आश्रम वासियों में से बहुतों के साथ मेरा निकट का सम्बन्ध था इसलिए इस तरह आगा खान-महल में पहुँचाने के लिए अनेकानेक चीजें मेरे पास आती रहती थी और मैं उन्हें पहुँचाया करता था।

एक बार कस्तूरबा को इच्छा हुई कि वे ग्रामोफोन पर भजन आदि सुनें। मैंने रेकार्ड भेजे। कस्तूरबा उन्हें अक्सर बजवाया करती थीं। गांधीजी भोजन में 'सूप' लेते थे इसके लिए सिल-बट्टे पर पीसकर रस निकाला जाता था। जब मुझे इसका पता चला तो मैंने बिजली की मिक्सर मशीन भेज दी। प्यारेलालजी न उसकी बनावट को समझने के लिए उसे खोला पर बाद में वे उसे फिट नहीं कर सके इस कारण कुछ दिनों के बाद वह मेरे पास लौट आयी। मैंने उसे ठीक-ठाक करके वापस भेजा। उसके साथ काँच का एक 'जग' था। वह भी टूट गया था। इसलिए उसके बदले चाँदी का बनवाकर भेजा था।

'तुम्हारे सिवा इसे और कोई नहीं सँभालेगा।

मैंने इस तुलसी के कई कच्चों-बच्चों की सार-सँभाल करके उन्हें जहाँ-तहाँ बाँटा। एक को सेवाग्राम में कस्तूरबावाले घर के आँगन में लगवाया। तुलसी का यह असल गमला बराबर सुरक्षित रहे, इसके लिए आज भी वह घर में मेरी दादी-माँ के ठाकुर मन्दिर पर ताँबे के दोहरे गमले के बीच रखा हुआ है और वहाँ रोज शाम को घी का दीया जलता है। ●

१०

कस्तूरबा का स्वर्गवास

अन्तिम बीमारी

१४ जब से आगा खान-महल जेल में कस्तूरबा की बीमारी शुरू हुई तभी से उनके लिए दवा, डॉक्टर और वैद्य आदि की व्यवस्था करने का सारा काम लेडी प्रेमलीला के और मेरे जिम्मे आया। मैं प्रेमलीला बुआ की 'पर्णकुटी' में रहता था और सब प्रकार की व्यवस्था मैं स्वयं करता था।

डॉक्टर सुशीला और डॉक्टर गिल्डर तो आगा खान-महल में उनके साथ ही थे। सरकारी डॉक्टर भी थे। जब डॉक्टरों की दवा और उनके उपचार से कोई फायदा नहीं हुआ तो कस्तूरबा ने देसी वैद्य का इलाज करवाने का निश्चय किया। डॉक्टर गिल्डर और सुशीलाबहन का आयुर्वेद पर आस्था नहीं थी। बड़ी आना-कानी के बाद वे राजी हुए।

इसके बाद भारत के प्रसिद्ध वैद्य श्री शिवशर्माजी को बुलवाया गया। उन्होंने बा की तबीयत देखी और उनका इलाज शुरू किया। शर्माजी पर्णकुटी में रहते थे और पूना शहर के किसी वैद्य के घर से प्रतिदिन ताजा औषधियाँ मँगवाकर दवा तैयार करवाते और लाते थे।

प्रायः कस्तूरबा को कष्ट बना रहता, इसलिए शिवशर्माजी का मन कभी शान्त या राजी न होता। उनके लिए रात के वक्त

गांधीजी के

"बिलकुल आखिरी घड़ी में जब रोगी बेहोशी की हालत में पहुँच जाय और फिर आप मंजूरी दें तो उससे फायदा क्या ?

इस तरह हमें अन्त तक मिलने ही नहीं दिया। उन दिनों दिल्ली से पूछे बिना आगा खान-महल के पेड़ की पत्ती भी हिल नहीं सकती थी।

१०७ डॉक्टरों ने पेनिसिलिन देने का विचार किया। उस समय पेनिसिलिन नया ही निकला था। अमेरिकन फौजों के सिपाहियों के लिए दिल्ली में रखा जाता था। हवाई जहाज द्वारा मँगवाया गया।

देवदासभाई ने कहा "दें।

गांधीजी को ठीक लगा नहीं।

"बा को क्यों व्यर्थ ही कष्ट पहुँचाता है ? आराम करने दे।"

नहीं दिया गया।

शिवरात्रि की शाम को कस्तूरबा ने शरीर छोड़ा।

१०८. मृत्यु हो जाने के बाद प्रेमलीला बुआ को और मुझे अन्दर जाने की अनुमति मिली।

जिस समय हम अन्दर पहुँचे कस्तूरबा को नहलाकर और उन्हें नयी साड़ी-चूड़ी पहनाकर, कपाल पर कुंकुम की बिन्दी लगाकर और फूल-माला पहनाकर सुला रखा था। घी का दीया जल रहा था। बापूजी कोने में बैठे थे और गीता-पाठ चल रहा था। कस्तूरबा ने पहले से ही कह रखा था कि अन्तिम समय में मुझे बापू के काते सूत की साड़ी पहनाना। तदनुसार उन्हें वह साड़ी पहनायी गयी थी। प्रेमलीला बुआ ने गंगा-जल और तुलसी की माला तो अपने यहाँ से पहले ही भेज दी थी।

१०९. दूसरे दिन सवेरे कस्तूरबा का दाह-संस्कार आगा खान-महल के अहाते में उस जगह की बगल में ही किया गया जहाँ महादेवभाई का दाह-संस्कार हुआ था। सुबह सरकार की ओर से लगभग १ व्यक्तियों को अन्दर आने की अनुमति दी गयी थी। सरकारी अधिकारियों ने नगर में इसकी सूचना कर दी थी। इस कारण सर्वश्री कर्वे रैंगलर परांजपे सर्वेन्ट्स ऑफ इण्डिया सोसाइटी के लोग 'केसरी'-कार्यालय के लोग आदि राजनीति में गांधीजी से भिन्न मत रखनेवाले दलों के लोग बड़ी संख्या में आये थे।

११० चिता की रचना के लिए सरकार की ओर से लकड़ी के अलावा चन्दन घी आदि सामग्री आयी थी। चिता की रचना पूना-वालों ने की। रचना कुछ ऐसी हुई कि जिससे वह जल्दी न जल सके। मुझे इसका काफी अनुभव था। इसलिए मैंने पूनावालों का ध्यान खींचा। किन्तु उन लोगों ने मेरी मानी नहीं। बोले

"यह हमारी पूना-पद्धति है।"

मैं कुछ बोला नहीं।

दस बजे पूना के एक सज्जन ब्राह्मणों के द्वारा दाह-संस्कार हुआ। देवदासभाई ने आग दी। एक बाँस चीरकर उसकी चपटी की नली बनायी गयी और मन्त्रोच्चार के साथ उसकी मदद से मुँह पर घी की धार छोड़कर चिता सुलगायी गयी।

बारह बज गये। रामदासभाई की बाट जोही जा रही थी लेकिन वे अभी तक पहुँचे नहीं थे। इधर बा की देह भी चन्दन में घी की आहुति आदि खूब पड़ने पर भी और दिन के दो बज जाने पर भी जल नहीं रही थी। दिल्ली में वहाँ के उच्च सरकारी

अधिकारी फोन पर खबरों की राह देखते बैठे थे । तार-टेलीफोन जारी थे । लेकिन कस्तूरबा की देह जल नहीं रही थी !

गांधीजी एक ओर पेड़ के नीचे कुर्सी पर बैठे हुए थे । सबने कहा 'अब आप अन्दर जाइये ।'

'सारा जीवन साथ में बिताया । अब इस समय साथ अधूरे के लिए छोड़कर क्या जाऊँ ?'

सब चुप हो गये ।

किन्तु देह अभी तक जल नहीं पायी थी !

अन्त में मैंने कहा 'मुझे चार्ज सौंपो ।'

सौंपा गया ।

कहा जाता है कि कन्या, खिचड़ी और चिता इन तीन को पलटना और हिलाना नहीं चाहिए । मैंने चिता को संकोरा–ऊँचा नीचा किया । धक्-धक् जलने लगी ।

गांधीजी बोले "बेशक कुटुम्बी है, फिर भी चिता जलाने का हुनर नहीं जानता । तुमने कहाँ सीख लिया ?"

"मुझे मेरी दादी-माँ ने शुरू से ही मौत-मसाण के कामों में जाने की आदत डाली । सगे-सम्बन्धियों की मौत में मुझे बिना पूछे भेज ही देती थीं । श्मशान में आखिरी घड़ी तक बैठा रहना पड़ता है इसलिए आग को जल्दी जगाना सीख लेना जरूरी हो जाता है । मैंने सीख लिया । अब यहाँ इसकी जिम्मेदारी अपने सिर लेना हुआ इसलिए इसमें निपुण हो गया हूँ ।"

तीन बजे मिट्टी राख हो गयी ।

इसी समय रामदासभाई* पहुँचे !

फिर सब लोगों को जेल से बाहर जाने के लिए कहा गया ।

* [illegible]

गांधीजी के

१११ अगले दिन सिर्फ गांधी-परिवार के लोगों को ही आगा खान-महल में जाने दिया गया। अस्थि-संचय के समय राख में से कस्तूरबा की चार चूड़ियाँ बिना जली ज्यों की त्यों निकलीं! सबको आश्चर्य हुआ। किसीने कहा : चूड़ियाँ 'फायर-प्रूफ' रही होंगी। किन्तु मनुबहन ने उन्हीं चूड़ियों में से जो उनके पास बची थी कुछ को आग में डालकर देखा तो वे तुरन्त जल गयीं! माना जाता है कि पति-परायणा सती साध्वी और सौभाग्यवती स्त्रियों की चूड़ी-कांटी नहीं जलती। ●

: ११ :

गांधीजी की बीमारी और मुक्ति

मलेरिया

११२. इस प्रकार आगा खान-महल के कारावास में महादेव भाई और कस्तूरबा की मृत्यु हुई। कस्तूरबा की मृत्यु के दो महीने बाद खुद गांधीजी को मलेरिया बुखार आने लगा। शरीर बहुत दुर्बल हो गया और इस दुर्बलता का असर उनकी बोल चाल पर भी दिखाई पड़ने लगा।

११३. डॉ. गिल्डर और डॉ. सुशीला नैयर ये दोनों ही गांधीजी के साथ आगा खान-महल में ही बन्दी थे। जेलों के उच्चाधिकारी डॉ. कर्नल भण्डारी गांधीजी को प्रतिदिन देखते-भालते थे। सर्जन जनरल डॉ. कैण्डी सरकार की ओर से उन्हें देखने आते थे। समाचार-पत्रों के लिए गांधीजी के स्वास्थ्य के सम्बन्ध में निकलने वाली विज्ञप्तियां उनके हस्ताक्षर से निकलती थीं। सारे देश में चिन्ता का वातावरण बन गया था। बाद में गैर-सरकारी डॉक्टरों को भी आने की अनुमति दी गयी थी। इनमें डॉ. दीनशा मेहता मालिश के लिए आते थे। प्रसिद्ध पैथोलाजिस्ट डॉ. कासाभाई नन्जर खून और पेशाब की जाँच करते थे। डॉ. विधानचन्द्र राय भी आये थे। डॉ. जीवराज मेहता जेल में थे। वे लगभग गांधीजी के साथ ही जेल से छूटे।

हुक-वर्म

शासन ने सरकारी और अर्धसरकारी तौर पर जो यह सारी डॉक्टरी जाँच करवायी उससे पता चला कि गांधीजी को 'मिश्रित मलेरिया' हो गया है। इसके कारण सारे देश में और विलायत में भी बड़ी बहस खड़ी हो गयी और अन्त में हुकूमत को उन्हें रिहा कर देने के लिए मजबूर होना पड़ा। (बाद में डॉ. कामाभाई गज्जर को गांधीजी के शरीर में 'हुक-वर्म' नामक जन्तु भी मिले थे।)

गांधीजी की इस बीमारी के दिनों में उनके स्वास्थ्य की जाँच के लिए माने-जाने गैरसरकारी डॉक्टरों का पैनल अधिकतर श्री तथा श्रीमती ठाकरसी के 'पर्णकुटी' नामक उस बँगले पर रहता था जो मलबार-हिल पर बना हुआ है। उनकी व्यवस्था आदि के काम में मदद करने के लिए प्रेमलीला बहन मुझे बुला लिया करती थीं। जब डॉ. विधानचन्द्र राय आये तो उन्हें आगा खान-महल से आने के पहले मैं जलपान के लिए 'पर्णकुटी' ले गया। कुमारी ने नाश्ते में हलुआ और मुठिया (पकौड़ियाँ) बनवाये थे। डॉ. विधानचन्द्र बातें करते जाते थे और एक के बाद एक हलुए की कटोरियाँ खाली करते जाते थे। अगर मैं भूल नहीं रहा हूँ तो मेरा खयाल है कि उस दिन दो-तीन बार हलुआ बनाना पड़ गया था।'

११४ ६ मई १९४४ की सुबह ८ बजे आगा खान-महल के कारागार से छूटकर गांधीजी 'पर्णकुटी' पहुँचे थे। गांधीजी के हमेशा के डॉक्टर जीवराज मेहता को भी सम्भवतः उसी दिन यरवदा जेल से छोड़ दिया गया था और वे उसी दिन गांधीजी को देखने 'पर्णकुटी' पहुँचे थे।

११५ चूँकि गांधीजी बीमार थे इसलिए डॉक्टरों ने उन्हें अरबी से-बसी जुहू के समुद्र-तट पर ले जाने का निश्चय किया। चर्चाएँ चली कि उन्हें जुहू में कहाँ रखा जाय। बिड़लाजी का बँगला जमनालालजी की 'जानकी-कुटीर' और हमारा उनके पुराने निवास-वाला बँगला इन तीनों में से किसी एक का चुनाव करना था। निर्णय करने की जिम्मेदारी डॉ. गिल्डर और डॉ. जीवराज की थी।

शाम को मैं पूना से बम्बई के लिए रवाना हुआ। उस समय गांधीजी ने कहा

'तीन जगहों में से एक का चुनाव करना है। डॉक्टर जो तय करें, सो कबूल कर लेना है। उनके निर्णय को बदलने की कोशिश न हो। वे जहाँ कहें वहीं मुझे पहुँचाओ।'

'वही करूँगा जो डॉक्टर कहेंगे। अपनी जगह में ले जाने का मोह नहीं रखूँगा। मेरी आँखों के सामने एक ही चीज है—आपके स्वास्थ्य की रक्षा हो और आप शीघ्र स्वस्थ हों।'

गांधीजी निश्चिन्त हुए।

बात यह थी कि उन दिनों समूचे देश के अधिकतर कांग्रेसी और गांधीवादी नेता तथा कार्यकर्ता जेलों की दीवारों के अन्दर बन्द थे और वातावरण बहुत ही तंग था।

गांधीजी छूट चुके थे लेकिन वे अमुक स्थान में रहें या न रहें इस सवाल को लेकर आम लोगों में भारी बहस खड़ी हो गयी थी और लोगों को यह पसन्द न था कि गांधीजी अमुक जगह में रहें।

१२ :

जुहू-वास (अन्तिम)

जहाँगीरजी का 'हट'

१२६ डॉक्टरों को लेकर मैं जुहू पहुँचा। सबसे पहले उन्होंने बिड़लाजीवाले मकान देखे। समुद्र-किनारे का उनका आगेवाला मकान किराये पर उठा हुआ था। पीछेवाला खाली था, लेकिन उसमें सीढ़ियाँ चढ़कर ऊपर की मंजिल पर जाना पड़ता था और वहाँ से बैठे-बैठे हर वक्त सामने समुद्र दीखता नहीं था।

यदि मैं भूलता न होऊँ, तो उस घर में रसोई-घर से धुएँ के आते रहने की भी कोई दिक्कत थी। 'जानकी-कुटीर' में हाल ही को रंग-रोगन किया गया था, उसकी गंध आ रही थी।

गांधीजी के पुराने निवासवाला हमारा बँगला एक संग्रहालय सा बन गया था, उसमें फर्नीचर और दूसरे साज-सामान का पार नहीं था। सन् १९१ से हम भी वहीं रहने लगे थे। इसलिए वहाँ रहना गांधीजी के लिए असुविधाजनक ही होता।

इन सब कारणों से डॉक्टर परेशान हुए। अन्त में मेरे अहाते में ही श्री जहाँगीर पटेलवाला बाँस और नारियल तथा खजूर के पत्तों से बना 'हट' (झोंपड़ा) डॉक्टरों ने पसन्द किया और निश्चय हुआ कि गांधीजी को उसीमें ठहराया जाय। जहाँगीरजी ने यह 'हट' बड़े शौक से बनवाया था और बहुत सुन्दर माना जाता था।

चौकीदार सरोजिनी देवी !

जहाँगीरजी पटेल पहले तो गांधीजी के विरोधी थे लेकिन गांधीजी के उपवासों के बाद उनका रुख बहुत बदल गया था और वे उनके प्रशंसक बन गये थे। मैंने उनसे पूछा। वे 'ब्लॉक' में बारहों महीने रहते थे। मैंने सुझाया कि अपना 'ब्लॉक' वे गांधीजी को रहने के लिए दे दें और उतने समय के लिए मैं उनके पड़ोस का अपना 'ब्लॉक' उन्हें रहने को दे दूं। मेरा 'ब्लॉक' कुछ ही दूर था। उनके और मेरे 'ब्लॉक' के बीच न कोई खास फासला था और न कोई रुकावट थी।

जहाँगीरजी ने अपनी स्वीकृति दे दी। तुरन्त ही उनके 'ब्लॉक' में गांधीजी को ठहराने के लिए सब प्रकार की आवश्यक सुविधाएं खड़ी की गयीं। ११ मई, '४४ के दिन गांधीजी वहां आये।

११७ पास ही के दूसरे 'ब्लॉक' में सरोजिनी देवी रहने लगीं। उन्होंने गांधीजी के चौकीदार का काम करने का जिम्मा उठाया।

कुछ समय के लिए श्रीमती विजयालक्ष्मी पण्डित भी उनके साथ आकर रही थीं। प्राकृतिक उपचारवाले डॉ॰ दीनशा मेहता भी आये और जहाँगीरजी के साथ रहने लगे। वे रोज गांधीजी की मालिश करते थे। इनके अलावा प्यारेलालजी कनुभाई और बहनों में डॉ॰ सुशीला अम्तुस्सलाम मनु आभा लीलावती मीराबहन आदि गांधीजी की मण्डली में थे। बाकी सब आते-जाते रहते थे।

इस प्रकार सारे देश के कार्यकर्ताओं और नेताओं का प्रवाह जुहू की ओर शुरू हुआ। सरोजिनी देवी कड़ा पहरा देती थीं। उनकी अनुमति के बिना कोई गांधीजी के पास पहुँच नहीं सकता था। सिर्फ मेरी दादी-माँ को सदर इजाजत थी। वे ८८ साल की उम्र में भी रोज सुबह-शाम दोनों समय गांधीजी के कुशल-समाचार पूछने के लिए अपने बँगले से जहाँगीरजी के 'ब्लॉक' तक जाती थीं।

११८ गांधीजी के पहुँच जाने के बाद मेरी दादी-माँ ने उन्हें 'हुक-वर्म' की बीमारी पर अपने अनुभव की एक देशी दवा सुझायी। गांधीजी ने कहा :

"दादी-माँ मुझसे बड़ी हैं। मेरी बड़ी बहन की जगह हैं जिस पर इसी वैद्यक में कुशल हैं, इसलिए उनकी दवा मुझे लेनी चाहिए।"

इसके बाद डॉ. सुशीलाबहन ने दादी-माँ से सब कुछ ब्योरेवार पूछ लिया और गांधीजी को अपनी यह राय दी कि दादी-माँ द्वारा सुझायी गयी देशी दवा निर्दोष है। उससे कोई नुकसान नहीं होगा। उसे लेने में हर्ज नहीं। ले सकते हैं।

गांधीजी ने वह दवा ली थी।

उस दवा में केवल बरास-कपूर और इलायची ये तीन चीजें ही थीं।

अपने पेट में से निकले हुए 'हुक-वर्म' के जन्तुओं को गांधीजी खुर्दबीन से देख रहे हैं, ऐसी पोज़ में उन्हीं दिनों लिया गया उनका एक फोटो बहुत प्रसिद्ध हो चुका है।

११९ जब से गांधीजी रिहा होकर आये तभी से हम सबने उनसे यह आग्रह करना शुरू किया कि वे कस्तूरबा और महादेव भाई के बारे में रोज थोड़ा-थोड़ा लिखवाया करें। गांधीजी ने कहा :

"रोज रात को मेरे बिस्तर के सिरहाने यो नोटबुक रख दिया करो। रोज सुबह उठकर कुछ लिखता रहूँगा।"

हम नोटबुक रखने लगे। रोज सबेरे आतुरतापूर्वक देखते। पर उसमें कुछ लिखा हुआ न मिलता! पूछने पर कहते :

"काम प्रयत्न करता हूँ लेकिन अत्यन्त निकट के होने के कारण कुछ लिख ही नहीं पाता हूँ।"

१२० गांधीजी की रिहाई के कुछ ही दिन पहले बम्बई के डॉक-यार्ड में एक भारी धड़ाका हुआ था। गांधीजी ने धड़ाकेवाली जगह देखने की इच्छा प्रकट की। मैंने पोर्ट ट्रस्ट के अधिकारियों से चर्चा की और उनके साथ बैठकर कार्यक्रम निश्चित किया। बाद में निश्चित समय पर मैं वहाँ गांधीजी को ले गया। यों तो धड़ाका हुए कई दिन बीत चुके थे फिर भी गांधीजी ने जगह-जगह मलबे के और दूसरे सामान के सुलगते ढेर और धुआँ देखा। कहीं-कहीं मुर्दों के जलने की बदबू भी आ रही थी।

इस विस्फोट में सिन्धिया का आठ हजार टन का एक स्टीमर उछलकर और उड़कर डॉक पर जा बैठा था। अगर वह न बैठता तो और भी ज्यादा नुकसान होता लेकिन इस स्टीमर ने बद नाम होकर धड़ाके का सारा धक्का और झटका अपने ऊपर ले लिया और इस तरह वह 'शॉक-एब्ज़ार्बर' साबित हुआ! जिस दिन यह विस्फोट हुआ मैं बम्बई में नहीं था कराची में था। विस्फोट के कारण बम्बई के हमारे कार्यालय में मेरे और श्री मनसुखलाल मास्टर के कार्यालयवाले कमरों के बीच का 'पार्टीशन' (पर्दा) टूट गया था।

कहा जाता है कि धड़ाकेवाले स्टीमर में सोना भरा हुआ था। उसकी [illegible] और [illegible] उछलकर पास-पड़ोसवाले लोगों के घरों में गिरी थीं। [illegible] हमारे सिन्धिया स्टीम नेविगेशन कम्पनी के कार्यालय में [illegible] माल की टंगा और ईंटों जैसी कोई चीज नहीं [illegible] [illegible] [illegible] की एक छत ही उड़कर आ गिरी थी!

१२१ [illegible] दिन गांधीजी जहांगीरजी पटेल के इस 'बँगले' में [illegible] प्रार्थना नियमानुसार सामने के समुद्र-तट पर शाम को

गांधीजी के

प्रार्थना होती रही। मैसावा, मन्तोरी पार्ला, सान्ताक्रूज, खार, बांदरा आदि सारे उपनगरों से और बम्बई से लोगों के दल-के-दल प्रार्थना के समय गांधीजी के दर्शन करने खिंचे चले आते थे। सैकड़ों-हजारों बहनें और बालक सान्ताक्रूज से पैदल आते थे। उनके लिए रास्ते में चार जगहों पर पानी से भरी रांजनें (चौड़े मुँहवाली मिट्टी की पकी हुई कोठियाँ) रखवाकर प्याऊ का प्रबन्ध किया गया था। जब समुद्र में ज्वार की स्थिति होती और पानी ठेठ किनारे की हद तक आ जाता, तो लोगों का समुदाय बिलकुल अहाते से सटकर आ बैठता या खड़ा रहता। लोगों की इस भीड़ से बचाने के लिए मैंने गांधीजी की बैठकवाली जगह के चारों ओर तार का एक अहाता खिंचवा दिया था।

गांधीजी को यह पसन्द नहीं आया। बोले

'अभी बाप से तो बचा ही आ रहा हूँ, यहाँ फिर ये तार क्यों लगवाये हैं?'

लेकिन मैंने तार का घेरा हटवाया नहीं।

१२८ शाम की प्रार्थना के समय जहाँगीरजी के 'बैंक' से समुद्र-तटवाली हमारे अहाते की बाड़ के अन्दर बनायी गयी इस प्रार्थना-भूमि तक गांधीजी को ले जाने का जिम्मा मैंने अपनी ओर रखा था। 'बैंक' से निकलकर अपने बड़े बंगले की उत्तरवाली बगल के रास्ते से हम प्रार्थना-भूमि पर पहुँचते थे। रास्ते में मैं गांधीजी की बराबरी से चलता था और प्रार्थना की बैठकवाले स्थान पर पहुँचकर जब गांधीजी बैठ जाते, तो मैं उनके पीछे अदब के साथ खड़ा रहता था। प्रार्थना के समय कभी आँखें बन्द न करता था। लोगों के समुदाय को देखता रहता था। मेरे मन में हमेशा

यह आशंका बनी रहती थी कि प्रार्थना के समय ही कोई उन्हें मार डालेगा।

रात के समय भी गांधीजी सरदार पटेल के 'बँगले' के चारों ओर से खुले बरामदे में ही सोते थे। इस कारण मेरे मन में खटका लगा रहता था। जब तक गांधीजी बापू रहते तब तक के लिए सरकारी पुलिस भी दिन में सादी पोशाक में सारा समय बँगले के अहाते के चारों ओर निगरानी किया करती थी। हुकूमत को डर रहता था कि अगर कभी कोई गांधी पर हमला करेगा तो निश्चय ही दुनिया उसके लिए ब्रिटिश सरकार को ही दोषी मानेगी।

१२९. प्रार्थना के बाद गांधीजी हर रोज हरिजन-कोष के लिए पाँच रुपये लेकर लोगों को अपने हस्ताक्षर देते थे और यदि लोग उनके लिए फल वगैरह लाते थे तो गांधीजी उन्हें बालकों में बाँट दिया करते थे। बापू में हमारे बँगले के पीछे आसपास की जगह पर बाँस नारियल तथा खजूर के पत्तों के कई 'बँगले' (झोंपड़े) बने हुए थे। उनमें से एक में विमको (Wimco) के कारखाने में काम करनेवाला एक अंग्रेज रहता था। जब गांधीजी प्रार्थना पूरी करके लौटते तो रास्ते में उसका 'बँगला' पड़ता था। उसके कोई एक दर्जन लड़कियाँ थीं। उनमें से छह-सात साल की एक लड़की रोज रास्ते की बाजू में खड़ी रहती और वापस लौटते हुए गांधीजी को बड़ी उत्सुकता से देखती रहती। सामने न आती। एक दिन मैं उसे गांधीजी के पास ले गया। गांधीजी ने उसे फल दिये। उस दिन से लड़की का डर भाग गया और वह रोज सामने आकर फल लेने लगी।

एक दिन लड़की नहीं आयी। गांधीजी को चिन्ता हुई। क्यों नहीं आयी? क्या बीमार पड़ गयी? मुझे पता लगाने भेजा। उसके पिता ने कहा

"इसको हमीने रोका है। रोज-रोज गांधीजी को परेशान करती होगी।

"नहीं नहीं। बिलकुल परेशान नहीं करती। उल्टे गांधीजी इसके बारे में पूछ-पूछकर हमें परेशान करते हैं।"

वे सब हंस पड़े और लड़की को भेज दिया। फिर तो जब तक गांधीजी रहे, उन्होंने उसे रोज आने दिया। मैंने गांधीजी के साथ उसका एक फोटो भी खींचा था और उसके पिता को दिया था। सारा परिवार खुश-खुश हो गया। पिता ने कहा

"आपने हमारे समूचे परिवार को सुखी बना लिया है। यह फोटो मैं संभालकर रखूंगा। हमारे परिवार में यह एक बहुमूल्य विरासत के रूप में सुरक्षित रहेगा।

१२४ प्रार्थना के बाद गांधीजी रोज नारियल का पानी पीते थे। मैंने उनसे कहा था कि पानी गिलास में लेकर पीने से उसका स्वाद बदल जाता है, इसलिए वे सीधे नारियल को ही मुंह लगाकर पी लेते थे। इस तरह गांधीजी को नारियल का पानी पीते देखकर बच्चों को बड़ा मजा आता था।

कुछ दिनों के बाद मैंने पीने के लिए नलीदार सींकें देनी शुरू की।

१२५. नारियल का पानी पीने के बाद वे समुद्र-किनारे घूमने निकल पड़ते। वैसे हमारा अहाता बहुत बड़ा था लेकिन गांधीजी को वहां घूमने में मजा न आता था। समुद्र किनारे घूमने के बारे

"हाथ की छाप चाहकर मैं दे दूँ लेकिन मैं पामिस्ट्री में विश्वास नहीं करता। इसलिए नहीं देता।"

"तो पैर की दीजिये।"

"वह भी नहीं होगा। लोग बाद में उसकी पूजा करने लगेंगे।"

फिर बोले "हरिजनों के लिए चार सौ रुपये दो तो एक छाप दूँ।"

मैंने कहा "जी नहीं! इतने बड़े सौदे की गुन्जाइश नहीं।"

१२७ हमारे परिवार में मेरे पितामह के समय से ज्योतिष का शौक चला आ रहा था। एक बार मैंने गांधीजी से पूछा

'आपकी जन्म-कुण्डली किसके पास मिलेगी? मुझे जरूरत है।"

"पी तो नहीं। शायद श्यामलदास (गांधी) के पास होनी चाहिए क्योंकि उनके पिता लक्ष्मीदास मेरे बड़े भाई थे। पिताजी की मृत्यु के बाद वे मेरे अभिभावक-तुल्य ही थे।"

: : :

१२८ एक बार स्वर्गीय बैरिस्टर जयकर जुहू में गांधीजी से मिलने आये। वे चर्चा करके गये उसके 1-२ दिन के अन्दर ही गांधीजी ने उन्हें एक पत्र लिखा और उसे उनके पास पहुँचाने का काम मुझे सौंपा। मैंने पत्र हाथों-हाथ पहुँचा दिया। बाद में वह मराठी विविध वृत्त में उलट-पलटकर और तोड़-मरोड़कर छपा। गांधीजी ने जयकर का ध्यान खींचा। जयकर ने इनकार किया और लिखा कि पत्र उनके यहाँ से अथवा उनकी तरफ से नहीं छपा है। गांधीजी ने मुझसे पूछा

"खुद मैंने उनके बंगले पर पहुँचकर उन्हें दिया था। वे दुमंजिले पर थे। उन्होंने मुझे ऊपर बुलाया। इस तरह किसी अन्य आदमी के हाथ में न देकर मैंने खुद उनसे स्वयं मिलकर उन्हीं के हाथ में दिया था।

१२९. जिन दिनों गांधीजी आगा खान-महलवाले जेल में थे उन्हीं दिनों प्यारेलालजी के छोटे भाई मोहनलाल की पत्नी शकुन्तलाबहन अपनी दस दिन की एक बच्ची को छोड़कर ही गुजर गयी थी। जिस तरह हरिलालभाई की मनु को कस्तूरबा ने पाला था उसी तरह इस 'नन्दिनी' को भी उसकी दादी-माँ ने पाल-पोसकर बड़ा किया था। माताजी सेवाग्राम में रहती थी और उन दिनों साल-डेढ़ साल की इस बच्ची को सेवाग्राम के लिए गांधीजी सहित समूचा सेवाग्राम उसे लिये-लिये फिरता था। उसे प्यार करते हुए गांधीजी का एक फोटो उनके अत्यन्त प्रसिद्ध फोटो में से एक है।

आगा खान-जेल में कस्तूरबा और गांधीजी के साथ प्यारेलालजी की बहन डॉ. सुशीला नैयर और मनुबहन गांधी भी थीं। जब वे लोग छूटे उस समय नन्दिनी की उम्र मुश्किल से बोलने की थी।

जेल से छूटने के बाद अपने पिता के पास कराची जाते समय मनु ने नन्दिनी के लिए 'फ्रॉक' और टोपी के बदले चाँदी का एक झुनझुना और दूध पीने का एक छोटा प्याला सुशीलाबहन के पास पहुँचाने के लिए मुझे सौंपा। मैंने दोनों चीजें सुशीलाबहन को दीं। उन्होंने गांधीजी को दिखायीं। गांधीजी दुःखी हुए। उन्होंने मनु के नाम उलाहनाभरा पत्र लिखा और पत्र के साथ उक्त दोनों चीजें गांधीजी ने मुझे वापस लौटायीं और ताकीद के साथ कहा कि स्टीमर

के रवाना होने से पहले मैं उन्हें मनु के पास पहुँचा दूं। मुझे वे स्टीमर पर समय रहते पहुँचानी पड़ीं।

कई साल पहले जब मेरे पिताजी जीवित थे तो वे एक बार विलायत से कुछ खिलौने लाये थे। महादेवभाई का पुत्र नारायण उन दिनों बहुत छोटा था। इस कारण उसके खेलने के लिए मैंने वे खिलौने महादेवभाई को भेज दिये, लेकिन उनके बारे में उनकी ओर से कोई जवाब नहीं मिला। मैंने पत्र लिखकर पूछा, 'खिलौने पसन्द आये?'

फिर भी जवाब नहीं मिला! कुछ समय के बाद जब मैं गांधीजी से मिलने गया तो उनका एक खासा गम्भीर भाषण सुनना पड़ गया, 'इस तरह के खिलौने देकर बालकों को बिगाड़ना है' आदि।

लेकिन वे तो मोन्टीसोरी के ढंग के हैं।
बात गांधीजी के मन में उतरी ही नहीं।

१२० आगा खान-महल के कारावास के दिनों में वाइसराय के साथ गांधीजी का जो लम्बा पत्र-व्यवहार हुआ था, छूट पहुँचते ही गांधीजी उसे तुरन्त छपाना चाहते थे। किसी छापेखानेवाले ने उसे छापने की हिम्मत नहीं दिखायी। आखिर गांधीजी ने सारा पत्र-व्यवहार साइक्लोस्टाइल करवाकर उसकी प्रतियाँ तैयार करवाने का काम मुझे और स्वामी आनन्द को सौंपा। हम दोनों ने मिलकर सैकड़ों पृष्ठों के उस सारे पत्र-व्यवहार को सावधानी के साथ साइक्लोस्टाइल करवाया और उसकी जिल्द बँधवाकर प्रतियाँ तैयार करवायीं।

इस पत्र-व्यवहार में एक परिशिष्ट प्रमुख पत्र के साथ जुड़ा था, उसे बीच में से हटाकर मेरे सुझाव पर हमने अन्त में

लगा दिया था। गांधीजी ने उसे देखा और हम दोनों को बुलाकर खूब आड़े हाथों लिया। स्वामी से बोले

'एक बार पहले भी तुमने ऐसा ही गड़बड़घोटाला किया था !

बाद में सम्पूर्ण पत्र-व्यवहार की इन साइक्लोस्टाइल प्रतियों को गांधीजी की सूचना के अनुसार हमने सब मॉडरेटों को और दूसरे सार्वजनिक नेताओं को सारे देश में भेजी थीं। इसके बाद भी लम्बे समय तक भाई देवदास और प्यारेलालजी बापू के हवाले से मुझे लिखते रहे कि साइक्लोस्टाइल पत्र-व्यवहार की प्रतियां अमुक-अमुक को भेजो। मैं भेजता रहा। इस तरह मैं गांधीजी और वाइसराय के बीच हुए इस ऐतिहासिक पत्र-व्यवहार का डिस्ट्रिब्यूटर (वितरण-कर्ता) बना था।

बाद में वह सारा पत्र-व्यवहार नवजीवन प्रकाशन ने पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया था।

१२२ मैं रोज सवेरे जुहू में गांधीजी से संबंध रखनेवाला सारा काम-काज करके और सारी व्यवस्था जमाकर अपने ऑफिस के काम से बम्बई चला जाता और शाम को प्रार्थना के समय से पहले लौट आता। एक दिन लौटकर देखा कि बिजली का तार लाने के लिए हमारे अहाते में बड़े-बड़े खम्भे खड़े किये जा रहे हैं। मैंने पूछताछ की

यह सब क्या हो रहा है ?

गांधीजी को एक फिल्म दिखानी है। उसके लिए बिजली का कनेक्शन जरूरी है, उसीके लिए खम्भे गाड़ रहे हैं। बोरा म्युनिसिपैलिटी की स्वीकृति प्राप्त की है। आज ही शाम को गांधीजी फिल्म देखेंगे।

महादेवजी भी बहुत दुखी हुए। गांधीजी के पास पहुँचकर माफी मांगने लगे।

'मुझे बहुत खेद है कि आज आपको अंगूर के बिना नाश्ता करना पड़ेगा। मुझे मालूम नहीं था कि मेरा नौकर हमारे कुत्तों के लिए खाना बनाकर मांस रेफ्रीजरेटर में रखता था। मीराबहन ने मुझे रेफ्रीजरेटर खोलकर उसमें रखा हुआ मांस दिखाया। जो कुछ हुआ है उसके लिए मुझे बहुत खेद है।

गांधीजी ने मीराबहन को बुलवाया और कहा

'इसमें क्या हर्ज है? मैं अंगूर लूँगा। अंगूर मांस की तश्तरी में तो रखे नहीं थे न?

मीराबहन को अपने पोथी-पण्डित होने का अर्थ तब सिरे से ध्यान में आया।

१२० जुहू में १४ दिन रहने के बाद गांधीजी १२ जून १९४४ के दिन पूना गये। बिदाई के समय महादेवजी ने और मैंने गांधीजी जितने दिन वे हमारे घर जुहू में रहे थे उन दिनों के प्रतिदिन के १) के हिसाब से अपनी एक छोटी भेंट उन्हें दी। गांधीजी हँसे। कहने लगे

मुझे इसका पता होता तो मैं अधिक ठहरता।

आप दुबारा फिर जरूर आइये। जब भी आयें तब का हम दोनों की ओर का यह सौदा आज ही से पक्का हुआ समझिये।

१२१ इस आशा से कि गांधीजी फिर जुहू आयेंगे और अपने ही घर ठहरेंगे बाद में महादेवजी ने अपनी 'नीम' वाली वह जगह मुझसे खरीद ली और बहुत बारीकी के साथ गांधीजी की आवश्यकताओं तथा अनुकूलताओं का अध्ययन करके उनकी सब सुविधाओं

की सब सुविधावाला एक सुन्दर सुरुचिपूर्ण दुमंजला बँगला आस-पीछे की जमीन के साथ उस 'बीच' वाले स्थान पर बनवाया। किन्तु दुर्भाग्यवश इसके बाद गांधीजी अपने शेष जीवन-काल के चार वर्षों में फिर कभी जुहू आकर रह नहीं सके। श्री जहांगीरजी के मन की मन ही में रह गयी!

बम्बई में जहांगीरजी के कई बँगले और घर थे, लेकिन वे खुद जुहू रहना पसन्द करते थे। मुझसे कहा करते

"मुझे निकालना मत। यहीं मरने देना।

बाद में पक्का मकान बनवा लेने पर भी अपनी स्नेहशालिनी पत्नी के साथ वे यहीं रहते रहे। उनकी स्नेहिल पत्नी भी बहुत भली थी। खादी पहनती थी। जहांगीरजी के साथ आदिवासियों की बस्तीवाले लोगों की सेवा किया करती थीं। लेकिन जुहू का जलवायु उनके लिए अनुकूल न रहा इस कारण अन्त में जहांगीरजी को वापस बम्बई रहने जाना पड़ा। ●

१२

कस्तूरबा का कोष और समाधियाँ

स्त्रियों और बालकों के लाभ के लिए

२ अक्तूबर, १९४४ के दिन कोष की यह रकम श्रीमती सरोजिनी देवी के हाथों सेवाग्राम में गांधीजी को समर्पित की गयी।

उस दिन सभा में बुआजी (सरोजिनी देवी) ने मजाक में कहा

"मैं इस थैली को लेकर भाग जाऊँ तो ?

सुनकर सब हँस पड़े।

१४० इस समारोह के अवसर का एक और संस्मरण मेरे स्मृति पट पर अंकित रह गया है। वह यों है

स्वर्गीय जमनालालजी की मँझली पुत्री मदालसाबहन ने विनोबाजी के निकट रहकर शिक्षा-दीक्षा प्राप्त की है। वे बड़ी कला-प्रेमी और उत्साही हैं। जिस दिन थैली-समर्पण का कार्यक्रम रखा गया था उस दिन शाम को मण्डप में सुन्दर 'रांगोली' करवाकर बीच में बा का बड़ा छाया-चित्र रखवाकर और अगणित अगरबत्तियों की सुगन्ध के बीच दीपमालाएँ प्रकट करके मण्डप को जगमगा देने का एक कार्यक्रम मदालसाबहन ने सोचा था। जब गांधीजी ने ये सारी तैयारियाँ देखीं तो उन्होंने मदालसाबहन को एक खासा भाषण सुनाया

"गांवों में हजारों-लाखों लोगों को तेल खाने तक को नहीं मिलता और तुम यहाँ साज-शृंगार पर इतना तेल जलाओगी इसे क्या कहा जाय ?

मिट्टी के दीये और दीपमालाएँ जल नहीं पायीं !

१४१ इस समारोह में गांधीजी ने कस्तूरबा-ट्रस्ट के उद्देश्यों का विस्तार करके कोष को गांवों की स्त्रियों और बच्चों के हित में खर्च करने का निर्णय किया। ट्रस्टी-मण्डल में पूँजीपतियों की संख्या

अधिक थी अतएव उसमें उतनी ही संख्या में गांधीवादी कार्यकर्ता भाई-बहनों को बढ़ाकर इस सम्बन्ध में कार्यकर्ताओं के अन्दर जो असन्तोष था उसे दूर किया और ट्रस्ट की स्थावर सम्पत्ति की रक्षा के लिए पाँच होल्डिंग ट्रस्टी नियुक्त करके उसका मार्गदर्शन करने की जिम्मेवारी स्वयं उठा ली।

इस प्रकार ट्रस्टी-मण्डल की पुनर्रचना करके और पूँजीपतियों के साथ कार्यकर्ता सेवक-सेविकाओं का उतना ही बड़ा समुदाय रखकर गांधीजी ने ट्रस्ट के संचालन के लिए जो संतुलन खड़ा किया था उससे उन्हें बहुत सन्तोष हुआ। बाद में वे अक्सर कहा करते थे: "यह बहुत सुन्दर मेल रहा है। इसमें पूँजी और संचालन दोनों के हाथ-पाँव जैसे कार्यकर्ता इकट्ठा बैठकर रोज-रोज के व्यवस्था-सम्बन्धी कामों को निपटाया करेंगे। आज तक ऐसी व्यवस्था और कहीं शायद ही हुई हो।

मैं इस ट्रस्ट की कार्यकारिणी में शुरू से ही बराबर चुना जाता रहा हूँ और ट्रस्ट की साधारण सभाओं में सबसे अधिक नियमित रूप से उपस्थित रहनेवालों में शुरू से शायद एक मैं हूँ।

१५२ कस्तूरबा-ट्रस्ट का मुख्य कार्यालय लम्बे समय तक बिड़ला-हाउस में रहा। ठक्करबापा उसके मुख्य मंत्री थे और मृदुला-बहन साराभाई संगठन मंत्री थीं। दोनों की कार्य-पद्धति में काफ़ी फर्क था। मैंने नियुक्ति के समय ही गांधीजी से कहा था:

'यह संघ काशी कैसे पहुँचेगा ?

ठक्करबापा तुम्हारे ऊपर की मंजिल पर बैठे हैं और मृदुला तल-घर में है।

"मृदुलाबहन इतनी जोरावर है कि तल-घर में बैठकर वे पूरी फौज को हिला सकती है। यदि ऐसा हुआ तो समूचा बिड़ला

हाउस ही धर्मशाला हो जायगा। या हाथियों के साथ पड़ का सर्वनाश।

गांधीजी हँसे। कहने लगे "लेकिन तुम बीच की मंजिल में हो इसलिए सब कुछ कुशल ही रहेगा।

१५३ मैंने गांधीजी को एक बार बिड़ला-हाउस देखने के लिए आने का निमंत्रण तो वर्षों पहले से दे रखा था। उन्होंने लिखा था 'कभी बम्बई आऊँ तो मुझे ले चलना।' लेकिन वैसा अवसर मुझे मिला नहीं। अब चूँकि कस्तूरबा-ट्रस्ट का कार्यालय बिड़ला-हाउस में था इसलिए हमने निश्चय किया कि ट्रस्ट की एक बैठक वहाँ रखी जाय। बैठक के दिन मैं गांधीजी को लिवाने बिड़ला-हाउस पहुँचा। मैंने तो सारा कार्यक्रम खानगी ही रखा था। फिर भी गांधीजी के आगमन के समय बिड़ला-हाउस के सामने आसपास के बस्तियों के लोगों की भारी भीड़ इकट्ठा हो ही गयी। उन्होंने मुझे बताया था कि ऐसा होगा। बैठकवाला बार्ड-रूम वातानुकूलित (एयरकण्डीशण्ड) था। गांधीजी को ठंड लगने लगी तो उन्होंने आग मांग ली। बैठक के बाद ऊपर की मंजिल पर कस्तूरबा-ट्रस्ट का कार्यालय देखने गये। लौटकर बापा से कहने लगे 'कस्तूरबा-ट्रस्ट का कार्यालय ऐसे महल में शोभता नहीं। खाली करो और सेवाग्राम ले जाओ।' बापा को बिड़ला-हाउस वाली जगह अनुकूल पड़ती थी पर उन्हें जाना पड़ा।

१५४ अपनी हमेशा की रीति के अनुसार बापा ट्रस्ट का सब व्यवहार अंग्रेजी में करते थे। गांधीजी को यह पसन्द न आता था किन्तु जब तक बापा रहे यह प्रथा चली ही रही। उसके बाद दिन पर दिन अंग्रेजी का व्यवहार घटता गया यद्यपि आज भी थोड़ा

बहुत तो चलना ही है क्योंकि श्री टाटा और श्री अम्बालाल को हिन्दी नहीं आती और मुझे भी अच्छी नहीं आती। इसलिए ट्रस्ट की कार्यवाही आदि समझने में थोड़ी कठिनाई होती थी। अतएव दोनों भाषाओं में काम-काज चलाना पड़ता है।

जानकीदेवी बजाज अंग्रेजी के बिलकुल विरुद्ध हैं इसलिए वे समय-समय पर अंग्रेजी का उपयोग बन्द करने की सूचना देती रहती हैं।

१५५. ट्रस्ट के पहले अध्यक्ष गांधीजी रहे। उनके बाद सरदार पटेल फिर ठक्करबापा (काम सँभालने के पहले ही स्वर्गवासी हुए) फिर दादा मावलंकर और अब प्रेमलीला बुवा हैं जो महिला विद्यापीठ पूना की उप-कुलपति हैं।

कोष की रकम गांधीजी को सौंपने के बाद श्री ठक्करबापा मुख्य मंत्री रहे और बाद में सुशीला पै रहीं। उनके बाद मध्य प्रदेश की राजलक्ष्मीबहन मंत्री बनीं जो अभी काम कर रही हैं। श्री श्यामलाल ठक्करबापा के विश्वासपात्र सहायक रहे। बापा ने शुरू से ही उन्हें हरिजन-सेवक-संघ से हटाकर कस्तूरबा-ट्रस्ट में ले लिया था। उन्हें प्रारम्भ में अस्थायी रूप से लिया था किन्तु वे अभी तक हैं। सब ट्रस्टियों के विशेषकर हरिजन ट्रस्टियों के समान रूप से विश्वासपात्र होने के कारण सब निश्चिन्त हैं।

१५६. लड़ाई के खत्म होते ही सब नेता जेल से बाहर आए। उनके बाद मैंने और प्रेमलीला बुवा ने गांधीजी के सामने यह प्रस्ताव रखा कि आगा खाँ-महल में कस्तूरबा की और महादेवभाई की जो समाधियाँ हैं उन्हें पक्का बना दिया जाय। और कहा कि आपकी स्वीकृति हो तो हमें अनुमति दीजिये जिससे हम इस सम्बन्ध की आवश्यक कार्यवाही करें। समाधियों का सारा खर्च उठा सकने का

गांधीजी ने नामदार आगा खान की बात मान ली। माननीय आगा खान ने समाधियों के लिए काले संगमरमर का उपयोग करने की इच्छा प्रकट की और स्वीकृति मांगी।

गांधीजी ने कहा "ठीक है!"

इस प्रकार कस्तूरबा की और महादेवभाई की दोनों समाधियां काले संगमरमर की बनीं।

१८७ समाधियों पर लिखे जानेवाले लेख के सिलसिले में भी बड़ी लम्बी चर्चा चली। इस विषय का सारा पत्र-व्यवहार मैंने गांधीजी को दिखाया और उन्होंने जो थोड़े सुधार किये उनके साथ सब तैयार करवाये।

प्रेमलीला बुआ ने समाधियों के आसपास एक छोटा-सा बगीचा लगवाने और दीया-बत्ती की व्यवस्था करवाने का काम अपने जिम्मे लिया। ये दोनों काम आज भी उनकी देखरेख में उन्हींकी ओर से हो रहे हैं।

एक सिर दर्द और बचा था। इन समाधियों के पड़ोस में आगा खान-महल का स्टोर-घर और पाखाने थे। दर्शन के लिए आने वाले सब लोगों को यह चीज खटकती थी इसलिए इन्हें हटाने के बारे में कोशिशें की गयीं। अन्त में सरकार ने समाधियों के आस पास की थोड़ी जमीन एक्वायर की। (अब सोसाइटी ने महल का अधिक हिस्सा एक्वायर करा लिया है।) इसके लिए एक मेमोरियल सोसाइटी स्थापित करनी पड़ी जिसका सन् १९५२ से मैं एक ट्रस्टी हूं।

इन समाधियों की सुरक्षा और मरम्मत आदि का खर्च गांधी-निधि की तरफ से होता था। कुछ समय के बाद निधिवालों

ने कस्तूरबा-ट्रस्ट के सामने प्रस्ताव रखा कि या तो कस्तूरबा-ट्रस्ट पुस्तकालय आदि के लिए दस लाख रुपये निकाले और निधि उसकी जिम्मेदारी सँभाले अथवा निधि कस्तूरबा-ट्रस्ट को असली रकम दे और कस्तूरबा-ट्रस्ट समाधियों को सँभाले। इस सिलसिले में कुछ पत्र-व्यवहार चलता रहा। अन्त में कस्तूरबा-ट्रस्ट ने यह काम अपने जिम्मे लिया।

इन समाधियों के बारे में लोगों की एक माँग यह भी थी कि समाधियाँ धूप में हैं इसलिए उन पर छतरी गुम्बद अथवा ऐसी ही कोई चीज बनवानी चाहिए। इस लोक-भावना का सम्मान करके बम्बई-सरकार ने चारों तरफ चार खम्भे खड़े करवाये। मैंने बम्बई के तत्कालीन मुख्य मंत्री श्री खेरसाहब का और बाद में श्री मोरारजीभाई° का ध्यान इस ओर खींचा था कि गांधीजी ने कहा था कि इन समाधियों पर और कुछ न बनवाया जाय ऊपर खुला आकाश ही रहने दिया जाय।

लिखा हुआ हो तो दिखाओ! वैसा कुछ होता तो गांधीजी के पत्र-व्यवहार में कहीं-न-कहीं उसका उल्लेख अवश्य हुआ होता।

लेकिन लिखित तो कुछ था नहीं।

अन्त में समाधियों के ऊपर कुछ बनवाने की बात खतम हो गयी। चारों खम्भे खड़े रहे और समाधियाँ खुली रहीं।

लोगों का आना-जाना जारी है। ●

१४

गांधी-जिन्ना-वार्तालाप

किफ़ायतसारी

१५८ जुहू से विदा होकर गांधीजी पूना पहुँचे। वहाँ पहुँचते ही पत्र लिखा : "मेरे पेट और सिर पर रख जाती मिट्टी की जो पट्टियाँ चढ़ती हैं उनके कपड़े जुहू में रह गये हैं। उन्हें भेज दो।" मैंने घर में पूछताछ करवायी पर मिले नहीं, इसलिए मैंने नयी खादी के फड़वाकर भेज दिये। गांधीजी ने फिर सन्देशा भेजा : "मुझे नयों की ज़रूरत नहीं थी, मेरे पुराने ही भेजो।" पुराने अब मैं कहाँ से भेजूं? नौकरों ने बेकार समझकर उन्हें फेंक दिया था। जिन फटे हुए कपड़ों को हम उतार फेंकते हैं, गांधीजी उन्हीं में से फाड़कर अपने उपयोग के लिए पट्टियाँ बनवा लेते थे।

बाद में जब मैं उनसे मिला तो इस सिलसिले में उन्होंने मुझे एक उलाहना दिया :

"नयी खादी फड़वाकर पट्टियाँ क्या भेजीं, यह क्या मान लिया गया कि पुरानी पट्टियाँ फेंक ही देनी थीं? तुम्हें किफ़ायतसारी की बात किस तरह समझाऊँ?"

"मैंने नहीं फेंकीं। नौकरों ने ही फेंक दी थीं।"

"तब तो नौकर तुमसे बढ़ गये!"

१५९. गांधीजी के साथ पत्र-व्यवहार, हरिजन-सेवा का सम्पादन और मेरी संस्थाओं तथा कार्यकर्ताओं के साथ की चर्चाओं के

"हम दूर-दूर के गाँवों से महात्मा के दर्शनों के लिए आये हैं। आप हमारा विचार क्यों नहीं करते? महात्माजी एक दिन न सोयेंगे तो क्या बिगड़ जायगा? महात्मा पुरुष के लिए तो सोना-न सोना सब बराबर ही है।

कभी-कभी कहीं-कहीं ऐसे लोगों की भीड़ भी मिल जाती जो हमारी बात सुनकर तुरन्त लौट जाती। पर ऐसे समझदारों की संख्या कम ही रहती।

१५१ सन् १९४४ के सितम्बर में जिन्नासाहब के साथ २१ दिन तक गांधीजी का निष्फल वार्तालाप चला। जब वे इसके लिए सेवाग्राम से बम्बई रवाना हुए, तो ट्रेन में मैं उन्हींके डिब्बे में उनके साथ था। बम्बई के पास कल्याण स्टेशन पर इतनी भीड़ मिली कि गाड़ी को रुकना पड़ा। स्टेशन पर [illegible] के दल-के-दल हाथ में बेलचे (छोटे छुरे) लिये नारे-बाज़ खड़े थे। "हमारे सरदार [illegible] ने हमें गांधीजी की हिफाजत के लिए भेजा है" यों कहकर उनमें से कुछ गांधीजी के डिब्बे में चढ़ने लगे। मैंने उन्हें रोका और समझाना शुरू किया

गांधीजी का अपना एक 'अपॉइन्टमेंट' है। ट्रेन के बम्बई पहुँचते ही उन्हें जिन्नासाहब से मिलने पहुँचना है। आप ट्रेन को रोकेंगे तो गांधीजी देर से पहुँचेंगे। मैं आपको डिब्बे में आने नहीं दूँगा। मेहरबानी करके आप सब फौरन ही प्लेटफॉर्म पर से नीचे उतर जाइये। जानते हैं कि मैं कौन हूँ?

सब उतर गये। लेकिन एक पत्थर या मुसलमान नवाबजादा डटा रहा। मैंने काफी समझाया-बुझाया पर वह न माना। गाड़ी चल दी।

"उतरते हो या नहीं ? उतरो। नहीं तो अभी धक्का दिये देता हूँ।

'महात्माजी की मौजूदगी में मुझे धक्का मारने की धमकी देते हो ? इतनी जुर्रत ?

"धक्का तो क्या घूँसा मारकर भी उतार सकता हूँ।

इतना कहकर मैंने सचमुच ही उसे घूँसा मारा और गाड़ी के दरवाजे की छड़ से उसका पंजा छुड़वा दिया। वह उतर गया।

१५२. इस प्रकार गांधीजी की आँखों के सामने किसीको पीटने की एक और घटना भी मुझे याद है। एक बार गांधीजी बम्बई के बिड़ला-हाउस में ठहरे थे। उन दिनों वे शाम की प्रार्थना के लिए नेपियन-सी रोड से कुछ नीचे की तरफ बने 'बंगटा-हाउस' के अहाते में जाया करते थे। उस समय मैं भी उनके साथ जाता था लेकिन मैंने माना था कि वहां उनकी सुरक्षा की जिम्मेदारी मेरी नहीं थी। इस कारण एक दिन किसी निमित्त से मैं प्रार्थना के समय अनुपस्थित रहा। दूसरे दिन मुझे पता चला कि प्रार्थना के समय गांधीजी मुझे खोज रहे थे। उन्होंने तो मान ही रखा था कि प्रार्थना के समय उनके पास रहना मेरा कर्तव्य था।

इसके बाद यहां भी गांधीजी का बिड़ला-भवन से बंगटा-हाउस ले जाने का काम मैंने अपनी तरफ रखा।

प्रार्थना के बाद गांधीजी बंगटा-हाउस में हरिजन-फण्ड इकट्ठा करते थे और पांच रुपये लेकर अपने हस्ताक्षर देते थे। पैसे मुझे सौंपते थे। एक दिन प्रार्थना समाप्त होने के बाद मैंने पैसों की पोटली अपने रूमाल में बांध ली और मैं गांधीजी के साथ रवाना हुआ। लोगों की भीड़ का पार न था। भीड़ ने गांधीजी को घर

लिया और आगे बढ़ने से रोक दिया। मैं भीड़ के अन्दर गांधीजी की बगल में रहकर उनके लिए रास्ता बनाने की कोशिश कर रहा था इतने में एक बदमाश ने मेरे हाथ की पैसोंवाली पोटली का रूमाल छीन लेने के लिए झटका दिया।

मैंने रूमाल नहीं छोड़ा और गांधीजी की आँखों के सामने ही उस गिरहकट को पीटा।

मैंने बाद में इस घटना पर अधिक विचार नहीं किया। लेकिन दूसरे दिन प्रार्थना-प्रवचन में गांधीजी ने इसका उल्लेख किया और मेरी 'बहादुरी' की प्रशंसा की। किन्तु साथ में यह भी कहा

"अगर रुपये जाते तो मैं शान्तिकुमार से वसूल कर लेता क्योंकि वे गरीब हरिजनों के थे।"

१५३ बम्बई में पूरे २१ दिन तक जो गांधी-जिन्ना-वार्तालाप चला उस समय गांधीजी प्रतिदिन बिड़ला-भवन से रवाना होकर माउण्ट प्लेजेण्ट रोड पर बने जिन्नासाहब के बंगले तक पैदल जाते थे। उस वक्त मैं भी हर रोज समय पर पहुँच जाता था और उनके साथ अन्त तक रहता था।

जब पहले दिन गांधीजी जिन्नासाहब के मुकाम पर पहुँचे और वे उनकी अगवानी के लिए दरवाजे तक आये तो अखबारवालों ने फोटो खींचना शुरू किये। बापू ने जिन्नासाहब को पीठ पर से हाथ डालकर अपनी छाती से लगा लिया।

जिन्ना क्या मुझे गिरा देंगे!

गांधीजी के अन्दर जाने के बाद मैं लौट आता था। कभी रुक भी जाता और समाचारदाताओं के साथ कम्पाउण्ड के लॉन पर बैठकर गप-शप में शरीक होता। जब गांधीजी के आने की

गाड़ देखा करते । अक्सर बहुत देर हो जाती और गांधीजी का शाम का भोजन जिन्नासाहब के घर से लाना पड़ता ! कारण यह था कि गांधीजी सूर्यास्त के पहले ही शाम का भोजन कर लेते थे ।

१.५४ गांधीजी जिन्नासाहब से कुदरती इलाजों की हिमायत करते और उन्हें मालिश के फायदे भी समझाते । इसके लिए उन्होंने अपना मालिश करनेवाले डॉ. शीतलजी को भी जिन्नासाहब के घर भेजा था । इसके अलावा गांधीजी ने एक अथवा एक से अधिक बार जिन्नासाहब के लिए 'खाखरे' (खस्ता रोटी) भी तैयार करवाकर भेजे थे !

उन दिनों जिन्नासाहब के बँगले के अहाते में होनेवाली इन सारी बातों और घटनाओं पर किसी संवाददाता ने एक सुन्दर लेख लिखा था जिसमें जिन्नासाहब की तुलना ताड़ के साथ और गांधीजी की आम के पेड़ के साथ की थी । जिन्नासाहब के बँगले के अहाते में एक ताड़ का और एक आम का यों दो पेड़ थे भी !

१.५५. २१ दिन तक चलनेवाली इन चर्चाओं में चलते रोज रोज की बातचीत का ब्योरा कायम पर लिखा जाता और शाम को पुष्टि के लिए जिन्नासाहब के पास भेजा जाता ।

ऐसा एक विवरण श्री अमृतलाल सेठ ने अपनी 'जन्मभूमि' पत्र में छापकर प्रकाशित कर दिया !

जिन्नासाहब ने शिकायत की :

'गांधीजी अपने यहाँ खुला दरबार रखते हैं और गोपनीय कागज-पत्रों की बातें फूटकर छपती हैं ।

"मैं कोई आश्रमवासी नहीं हूँ।"

गांधीजी गमगीन हो गये। ठक्करबापा ने अमृतलाल सेठ को बुलाकर कहा "ऐसी गम्भीर चर्चाओं के समय इन तरीकों से काम लेना कितना शोभनीय माना जायगा?

"लेकिन मैंने कागज गांधीजी के पास से प्राप्त नहीं किया है। किसी के घर से मिला है!

लेकिन जिन्नासाहब ऐसी बात पर विश्वास कैसे करेंगे?

"सो मैं देख लूँगा। आपको तो मैं वचन देता हूँ कि आपके (गांधीजी के) यहाँ से मैं कुछ भी नहीं लूँगा। और क्या चाहिए?

"आप चाहे प्रतिपक्षी के यहाँ ही हाथ-चालाकी से काम करवाते हो, लेकिन आपके जैसे व्यक्ति को तो इस तरह की होशियारी भी नहीं दिखानी चाहिए! क्योंकि आखिर तुम मिलाकर इसमें देश की हानि ही होती है।

'बापा, गुस्ताखी माफ करो! लेकिन मैं एक पत्रकार हूँ। किसी भी उपाय से महत्त्व के समाचार प्राप्त करना हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। इस तरह अपनी समझ के अनुसार देश और समाज की सेवा करना हमारा काम है। मैं कोई 'आश्रमवासी' नहीं हूँ। हम तो चाहे जिस तरह तालाब खोदकर भी खबरें इकट्ठा करते और छापते हैं।

इस मामले में मुझे कुछ इसलिए रस रहा था कि मेरा लिखा हुआ एक ड्राफ्ट गांधीजी के पास था। वह हाल ही 'जन्मभूमि' से मुक्त होकर आया था और मैंने ही गांधीजी के पास भेजा था। हमारे मन में सहज ही यह शक पैदा हुआ कि शायद अमृतलाल सेठ के इस षड्यन्त्र में यह ड्राफ्ट भी सम्मिलित होगा। दूसरी तरफ गांधीजी सहित सब लोगों को उस ड्राफ्टर पर पूरा-पूरा विश्वास था।

खिसियाहट !

सौभाग्यवश बात ऐसी हुई कि इस घटना के बाद एक-दो दिन के अन्दर ही जिन्नासाहब द्वारा तैयार कराया गया लेकिन गांधीजी को न भेजा गया दूसरा एक पत्र अमृतलाल सेठ ने 'जन्मभूमि' में छापा और जिन्नासाहब ने गांधीजी के 'खुले दरबार' पर जो कटाक्ष किया था उसे मिथ्या सिद्ध करके उल्टे उन्हींका 'दरबार' फटा है इसे साबित कर दिखाया ।

जिन्नासाहब की खिसियाहट का पार न रहा ।

श्री अमृतलाल सेठ ने यह दूसरा पत्र छापकर ठक्करबापा को और अन्य सब लोगों को विश्वास न करा दिया होता तो सबके मन में उस टाइपिस्ट के लिए थोड़ी-बहुत शंका अवश्य ही बनी रहती ।

१५६ यों तो गांधीजी के यहाँ हम कुछ लोगों को अनेक महत्व की बातें सुनने और महत्व के पत्र-व्यवहार की फाइलें पढ़ने को मिला करती थीं लेकिन इस गांधी-जिन्ना-वार्तालाप से सम्बन्ध रखने वाला पत्र-व्यवहार हमें अन्त तक बिलकुल देखने को नहीं मिला । एकदम अन्त में जब गांधीजी की अनुमति मिली तभी हम उसे देख पाये ।

इन चर्चाओं के दौरान शुरू के मसविदे लगभग हमेशा ही राजाजी तैयार करते थे । गांधीजी उन्हें देख लेते थे । फिर खुद तैयार करते थे और राजाजी के साथ चर्चा कर लेते थे । अक्सर सारी चीज नये सिरे से भी लिखते थे ।

जब ये मसविदे हमें पढ़ने को मिले तो हममें से बहुतों को और खासकर मेरे समान अल्पबुद्धिवालों को गांधीजी के मसविदे

बहुत बढ़िया लगे थे। राजाजी थे डिप्लोमेटिक, गांधीजी थे बिलकुल सीधे-सच्चे—straightforward !

लेकिन राजाजी और गांधीजी के लेखों पर सम्मति प्रकट करने का मेरा अधिकार ही कितना? इसलिए मैं तो सब कुछ पढ़कर ही मन में सन्ताप का अनुभव करता था।

१९४४ ऐसी ही एक दूसरी घटना और है। दिल्ली में हुई गांधी-जिन्ना-चर्चा के दिनों में 'शंकर्स वीकली' वालों ने जिन्नासाहब के बारे में एक व्यंग्य चित्र छापा था। गांधीजी ने उन्हें बुलाकर अपनी आन्तरिक वेदना व्यक्त करते हुए कहा था

कहना होगा कि आपके इस कार्टूनों-जैसी कार्रवाइयों के कारण ही जिन्नासाहब के साथ की चर्चा भंग हो गयी। ०

महाबलेश्वर—पंचगनी

हिरोशिमा !

१५८ सन् १९४५ की गर्मियों में गांधीजी महाबलेश्वर गये थे और वहां २१ अप्रैल से ११ मई तक मेरे चचेरे भाई सेठ रतनसी धरमसी के 'मोरारजी कैसल' में रहे थे। मैं भी उनके साथ था।

दक्षिण अफ्रीका से श्री मणिलाल गांधी आये थे। वे थे। राजाजी भी थे ही। यूरोप विश्व-युद्ध अभी चल ही रहा था।

१५९ उन्हीं दिनों अमेरिका ने जापान के दो समृद्ध नगरों हिरोशिमा और नागासाकी पर, एटम बम फेंककर लाखों निर्दोष नागरिकों को स्त्रियों-पुरुषों और बालकों को भून डाला और सारे संसार को चकित किया। इसके बाद कुछ ही दिनों के अन्दर जापान को शरणागति मांगनी पड़ी और विश्व-युद्ध समाप्त हुआ।

लड़ाई की समाप्ति के साथ ही विजयी मित्र राष्ट्रों में सर्वत्र विजय की दुन्दुभि बजने लगी। इस विचार से कि दुनिया के सामने इस विजय के बारे में गांधीजी की प्रतिक्रिया आ सके मैंने उनके सामने अपना यह प्रस्ताव रखा कि वे इस विषय पर समाचार-पत्रों के लिए अपना एक वक्तव्य दें।

गांधीजी ने चार-पांच पंक्तियों का एक संक्षिप्त वक्तव्य लिखा। लेकिन उसे समाचार-पत्रों में प्रकाशन के लिए देने का राजाजी ने घोर विरोध किया।

मेरी तरह भी मणिलालभाई इस पक्ष में थे कि उसे समाचार-पत्रों में भेजा जाय। प्यारेलालजी इसके विरुद्ध थे और राजाजी के साथ थे। दोनों हमसे कहने लगे

"इस प्रकार का वक्तव्य देने से क्या होगा? गांधीजी के ऐसे वक्तव्य से तो उन्हें सरकार वर्किंग कमेटी के सदस्यों को छोड़ना चाहती होगी तो भी नहीं छोड़गी।

मैंने कहा "यूरोप-अमेरिका के गांवों में रहनेवाले लोग भी गांधीजी का सन्देश पाने और सुनने के लिए उत्सुक रहते हैं। अब चूंकि लड़ाई खत्म हो चुकी है इसलिए वहाँ के लोग यह जानने को बहुत ही उत्सुक होंगे कि इस बारे में गांधीजी के अपने विचार क्या हैं। इसलिए अगर गांधीजी युद्ध की समाप्ति के बारे में अपने विचार व्यक्त करेंगे तो वहाँ की जनता उनका स्वागत ही करेगी और सारे संसार पर उसका प्रभाव भी पड़ेगा।

गांधीजी राजाजी को समझा सको तो समझाओ। सब कुछ आपस बीच तय कर लेना। अगर राजाजी की स्वीकृति पा सको तो सुबह समाचार-पत्रों को देने में मुझे आपत्ति नहीं।

दूसरे दिन गांधीजी ने हमसे पूछा तो मैंने और मणिलालभाई ने अपनी हार कबूल की। हम दोनों राजाजी को समझाने में विफल रहे थे।

अपने सन्देश में गांधीजी ने नीचे लिखे आशय की बात कही थी

मित्र राष्ट्रों के विजयोत्सव के बारे में मैं सन्देश क्या दूं! उनसे मैं तो सवाल ही पूछूंगा कि यह विजय सत्य पर सत्य की है अथवा असत्य पर सत्य की और तानाशाही के विरुद्ध लोकशाही की? क्या अब बैर का बदला लेनेवाली शक्तियाँ ही सब कहीं

'इतनी देर तक जागते हो ? क्या चर्चा चलती है ?

"यह हमारा 'गपशप क्लब' है !

'तुम्हारे क्लब के मुखिया कौन हैं ? मुझे उनसे कहकर मनाही हुक्म जारी करवाना पड़ेगा !"

हमने राजाजी को प्रणाम किया। कहा 'ये बैठे हैं हमारे प्रेसिडेण्ट !

गांधीजी को आश्चर्य हुआ। उनको इस बात की शंका भी कैसे होती कि राजाजी के समान बुजुर्ग हमारे 'गपशप-क्लब' में आकर बैठे होंगे !

१६६ काम का टहलते समय गांधीजी किसीके साथ भी बात क्यों न करते हों उनका ध्यान बराबर सब ओर लगा रहता था जो उनके सुनने जैसा होता उसे बिना चूके सुनते और टोकते। एक दिन की बात है, हम अंग्रेजी में बातचीत कर रहे थे गांधीजी ने सुना और हमें फौरन टोका :

'अंग्रेजी में बात क्यों करते हो ?

एक दिन जयपुर के महाराजा पधारने वाले थे। वे टहलते समय साथ हो गये। कुमारी (डरोथिमी देवी) ने गांधीजी के साथ उनका परिचय कराया और कहा "हाल ही महाराजा ने सर मिर्जा इस्माइल के समान एक लिबरल (उदार विचारशील) मुत्सद्दी को अपनी रियासत का दीवान बनाया है।

गांधीजी 'अच्छी बात है। लेकिन राज के मालिक बनकर नहीं अपने को राज का ट्रस्टी समझकर राज चलाइये।

वे लोग गांधीजी के साथ बातचीत करते हुए चल रहे थे। मैं डॉ॰ सुशीला के साथ था। हम दोनों पीछे रहकर धीमी आवाज

में बातचीत करते हुए चल रहे थे । मुशीसाहब ने मुझसे पूछा 'आप रसोई में क्या-क्या बनाना जानते हैं ?'

मैंने कहा : 'एक रोटी बेलना छोड़कर बाकी सब जानता हूँ ।'

गांधीजी जयपुर के महाराजा से बातचीत कर रहे थे फिर भी उन्होंने हमारी बात बराबर सुन ली । पीछे को मुड़े और हमसे कहने लगे

'दक्षिण अफ्रीका में मैं भी बेलना नहीं जानता था । बाद में मैंने युक्तिपूर्वक एक नयी तरकीब खोज निकाली । जिस तरह बेलना जानता था उस तरह बेलकर उसे कटोरे की कोर से दबा देता इससे रोटी गोल बन जाती !'

एक बार मैंने गांधीजी से कहा : 'आप एक ऐसे बिकरे हैं कि आपकी मेज पर रहनेवाले उन तीन बन्दर-गुरुओं को बदलकर उन्हें नया रूप दे देना चाहिए । उनमें एक ऐसा हो जो दूरबीन की मदद से सूक्ष्म-से-सूक्ष्म वस्तु को देख लेता हो दूसरा कानों में मशीनें लगाकर धीमी-से-धीमी आवाज को भी सुन लेता हो और तीसरा मुँह पर पट्टी बाँधने के बदले लाउडस्पीकर के आगे मुँह डाल कर इतनी जोर से चिल्लाता हो कि दूर दूर तक सुनाई पड़ जाय !'

गांधीजी [illegible] मारकर हँसे ।

१६ [illegible] भी लिया : एक बार भारत में 'मराठी राज' नामक [illegible] ग्रन्थ के लेखक हिन्दू-मुस्लिम एकता के प्रबल हिमायती और उसके लिए उर्दू भाषा के प्रचार की आवश्यकता के समर्थक [illegible] गांधीजी से मिलने के लिए [illegible] आये । [illegible] लिया था [illegible] आज मुझे याद नहीं रहा

गांधीजी के

मुश्किल बातचीत में थे। सुन्दरलालजी के अपने मिज़ाज-जन्मजाती प्रति उत्साह को लेकर या ऐसी ही किसी बात पर गांधीजी बहुत संतप्त हो उठे थे। उन्हें इतने उग्र स्वरूप में देखने का यही एक प्रसंग मुझे याद है। एकदम लाल-पीले हो गये थे।

१६३ गांधीजी मामलेसर से पंचगनी पहुँचे। कहने लगे "यहाँ तो पैसेवाले ही रह सकते हैं। साधारण स्थितिवाला पंचगनी में रहे?"

राजाजी यहाँ भी साथ थे। उन्होंने पंचगनी से एक बहुत लम्बा निजी तार जिन्नासाहब को किया था। प्यारेलालजी के अलावा और किसीको इसकी जानकारी नहीं थी। जब दूसरे दिन मैं डाक लेने डाकघर गया तो डाकबाबू ने कहा "कल जिन्नासाहब के नाम भेजे गये राजाजी के तार के दाम गिनने में थोड़ी भूल हो गयी है। क्या आप बाकीवाली रकम चुका सकेंगे?"

एकाध रुपये की ही भूल थी। पैसे मैंने डाकबाबू को चुका दिये और घर आकर राजाजी से इसकी चर्चा की। राजाजी का मुँह एकदम उतर गया! बोले तो कुछ नहीं पर उनकी मुख-मुद्रा से मैं समझ गया कि बात बहुत ही गोपनीय थी और उन्हें डर था कि थोड़ी भी फैली तो भारी नुकसान होगा।

मैंने उन्हें आश्वस्त किया।

१६४ वैसे पंचगनी में वर्षा मामलेसर की तुलना में कम ही होती है फिर भी वहाँ पानी खूब बरसता है। रास्ते हमेशा कीचड़ दलदलवाले बने रहते हैं। एक दिन मैंने देखा कि राजाजी अपनी चप्पलों का भाग साफ कर रहे थे। मैंने चप्पलें उनसे छीन लीं और लगा हुआ कीचड़ खुरचकर और घिसकर साफ कर दी। उनके चेहरे पर भरपूर वात्सल्य उमड़ आया।

मैं गांधीजी की चप्पलें भी प्राय साफ किया करता था। लेकिन उनके साथ की बहनें उनके कपड़े किसीको धोने नहीं देती थी। एक बार मैंने मांगे।

"आपसे यह काम नहीं होगा। दूध की तरह सफेद निकलने चाहिए।

मैंने चुनौती स्वीकार की। भलीभांति धोकर बगुले के पंख जैसे कर दिये।

●

१६ :

खादी और उद्योग

सूर्य और ग्रह-मण्डल

१९५. चरखे पर गांधीजी की आस्था अटल थी। इस आस्था की तुलना उनकी राम-नाम अथवा गीताविषयक आस्था के साथ की जा सकती है। अपने देश की अर्थनीति में वे चरखे को सदा सूर्य की और बाकी के गृहोद्योगों को उसके ग्रह-मण्डल की जगह दिया करते थे।

१९६ मैं भी लगभग शुरू से ही अर्थात् सन् १९२ में विलायत से लौटने के बाद से ही खादी में दिलचस्पी लेने लगा था। सन् १९२९ से सम्पूर्ण खादीधारी बना। खादी-ग्रामोद्योग-भण्डारों में हमेशा ही जाया करता था और भण्डारों के संचालकों से मिलकर उनके साथ खादी की किस्म (प्रकार) उसकी बुनाई, रंगाई, छपाई आदि से सम्बन्ध रखनेवाले प्रत्येक प्रश्नों के बारे में चर्चा करता और सुझाव देता था।

खादी का 'डिस्प्ले' सबसे पहले मैंने बनवाया और जिन दिनों गांधीजी मैसूर के नन्दी-हिल पर थे वहाँ उन्हें दिखाया था। मेरा यह 'डिस्प्ले' वर्षों तक काम देने और हजारों मीलों की यात्रा करने के बाद भी अब तक वैसा का वैसा बना हुआ है!

अपने कार्यालय के कर्मचारियों को दी जानेवाली पोशाक में खादी का और दफ्तर में बरते जानेवाले कागजों में हाथ के बने कागजों

का थोड़ा उपयोग शुरू करने की पहल भी मैंने ही की थी। इस पर एक टिप्पणी लिखकर गांधीजी ने अपने 'नवजीवन' साप्ताहिक में दूसरी व्यापारी-पेढ़ियों से इसकी सिफ़ारिश भी की थी।

खादी में नयी-नयी नमूने और डिज़ाइनें तैयार करवाने का भी मुझे बड़ा शौक था। उन दिनों हमारी सोलापुर-मिल के रंगीन बेडों की डिज़ाइनें मशहूर थीं। खादी में उस तरह के बेड तैयार करवाने में और रंग दिये गये रेशम के कचरे से वाफ़्ता-खादी तैयार करवाने में मेरा हाथ रहा था।

१६७ कांग्रेस के अधिवेशनों के अवसर पर होनेवाली खादी-ग्रामोद्योग-प्रदर्शनियों में भी मैं सम्मिलित होता रहता था। खादी की नेकटाई, कमरपट्टे 'होल्डॉल' और ऐसी दूसरी अनेक चीज़ें मैं पहल करके तैयार करवाता और उनकी सम्भावनाओं को मित्रों की दृष्टि में लाता—पहुँचाता। आश्रम के हाथ-कते सूत को दूसरे हाथ-कते सूत से मिलाकर मैंने लखनऊ में जामदानी के जो थान तैयार करवाये थे, उन्हें सेवाग्राम की ग्रामोद्योग-प्रदर्शनी में गांधीजी ने सभा में आये लोगों को दिखाया था।

जिस समय गांधीजी ने प्रदर्शनी की सभा में जामदानियों की यह बात कही थी, उस समय मैं वहाँ हाज़िर नहीं था। थोड़ी दूर पर एक दूसरे काम में उलझा हुआ था। पं. जवाहरलालजी मेरे पास दौड़ आये और मुझसे कहा: "अपनी उन जामदानियों को लेकर चलो। बापू तुम्हें प्रदर्शनी की सभा में बुला रहे हैं।"

मैं तुरन्त ही अपने मुकाम पर पहुँचा और जामदानियाँ लेकर सभा में गया। गांधीजी ने बड़े ही उत्साह के साथ उन्हें सभा को दिखाया और मेरे खादी-प्रेम की प्रशंसा की।

इस अवसर पर पं. जवाहरलालजी ने मुझसे पूछा था
"तुम इन जामदानियों का क्या उपयोग करोगे ?
'मैं इनकी शेरवानियाँ बनवाऊँगा।"
जामदानी के कपड़े की शेरवानी अच्छी नहीं।"
इन जामदानियों के कुछ थान आज भी मेरे पास पड़े हैं।

१९८. चूँकि गांधीजी जैसे एक धर्मप्रचारक और समर्थक स्वयं आप इस धन्धे की मदद के लिए खड़े हो गये थे इसलिए बुनाई काम के कारीगरों और मामूली बुनकरों ने भी बड़े उत्साह के साथ बाप-दादों के जमाने की तरह-तरह की पुरानी डिजाइनों को फिर जिन्दा किया और उन्हें खादी में चलाया था।

कुछ समय के बाद यह कारण देकर कि इस प्रकार की बुनावट के कारण खादी महँगी हो जाती है, खादी-भण्डारों ने उन डिजाइनों को छपवाकर चलाना शुरू किया! उस समय इसके विरुद्ध अदालत में बुनकरों के इस केस को गांधीजी तक ले गया था।

मेरी दलील यह थी कि ऐसा करने से ऐसी पुरानी डिजाइनों को सजीवन करके बुननेवाले बुनकरों की रोजी को खामखाह छीन लेंगे और उनके पेट पर लात मारकर रक्षक बनने के लिए निकले हुए लोग ही भक्षक बन जायेंगे! मतलब यह कि खादी ही खादी को मारेगी Khadi will kill khadi. खादी प्रचारकों का धर्म बुनकरों की रक्षा करने का है, उन्हें मार डालना अथवा उनका शोषण करने का नहीं! शोलापुर-मिल की व्यवस्था के समय का मेरा अपना अनुभव यह था कि जब हमारी मिल कोई भी नयी किस्म या नया नमूना अथवा डिजाइन तैयार करती कि तुरन्त ही दूसरी मिलें उसी नमूने की लेकिन हमारी

पोत की किनारियाँ तैयार करके बाजार में लातीं। फलस्वरूप वैसी किनारियाँ हमेशा के लिए नष्ट हो जातीं।

मेरी एक और भी शिकायत थी। और वह यह थी कि खादी की रँगाई-छपाई आदि का सारा काम बम्बई में ही होता था! फिर वह दिन पर दिन बढ़ता भी जा रहा था। यह बात भी शोभनीय तो नहीं ही थी क्योंकि गांधीजी के सिद्धान्त के अनुसार तो ये सारे काम गाँवों में ही चलने चाहिए। यदि इसका आग्रह न रखा गया तो खादी-भण्डार गाँवों में बस दरिद्रनारायणों के और बुनकरों-कारीगरों के न रहकर शहरों के ही एजेन्ट बन जायेंगे।

१६९. खादीधारी (Habitual Khadi wearer) किसे कहा जाय ? जो भाई अथवा बहन पहनने के कपड़ों तक ही खादी-धारी हों लेकिन चादर, तकिया गिलाफ पर्दे आदि घरेलू उपयोग की दूसरी चीजों के बारे में खादी का आग्रह न रखते हों उन्हें खादीधारी माना जाय या नहीं आदि बातों की चर्चा भी उन दिनों मैंने छेड़ी थी और गांधीजी से इसकी व्याख्या निश्चित करवायी थी। उन्होंने निर्णय दिया था कि जो भाई अथवा बहन अपने पहनने के कपड़ों में (wearing apparel) हाथ-कती हाथ-बुनी शुद्ध खादी का ही सदा उपयोग करें उन्हें खादीधारी माना जाय फिर चाहे दूसरे सब उपयोगों के लिए उन्होंने खादी शुरू न भी की हो।

इसके अलावा विदेश-यात्रा के दिनों में जहाँ खादी के सिवा दूसरी बनावट के कपड़े पहनना या बरतना अनिवार्य हो वहाँ उन्हें पहनने और बरतने की छूट मानी जाय। इसके सिवा जेल में या अस्पताल में भी मिल के कपड़ों का यूनीफार्म जैसी अथवा टोपी के

जाते पहनने में खादीधारी का व्रत टूटा हुआ न माना जाय क्योंकि उसमें अनुशासन-पालन के साथ ही सत्याग्रही का विनय भी है। सैनी अथवा योगी का वह एक धर्म बन जाता है।

१७० हमारी शोलापुर-मिल में खारी नाम के एक कारकुन थे। वे खादी स्वदेशी आदि विषयों में बहुत रुचि रखते थे। उनसे मैं खादी के और देश के मिल-उद्योग आदि सम्बन्धी जानकारी इकट्ठा करवाता था। मैं इस सम्बन्ध के आँकड़े कोष्ठक चार्ट और ऐसी ही अन्य सामग्री तैयार करवाकर गांधीजी को भेजा करता था और इस सम्बन्ध में उनके साथ पत्र-व्यवहार करता रहता था। मेरे द्वारा भेजी गयी इस प्रकार की सामग्री की चर्चा गांधीजी अपने 'नवजीवन' और 'यंग इण्डिया' पत्रों में किया करते थे।

१७१ प्रान्तों का शासन जनता के प्रतिनिधियों के हाथ में आने के बाद सन् १९४ में गांधीजी ने खादी के काम को समूचे देश में फैलाने और बढ़ाने के लिए देश के सामने २५ लाख रुपयों की एक माँग रखी थी और इसके लिए सार्वजनिक रूप से एक अपील भी निकाली थी। इस अपील के सिलसिले में बम्बई शहर की वसूली का काम गांधीजी ने मुझे और श्री डाह्याभाई वल्लभभाई पटेल को सौंपा था और उसे हम दोनों ने लक्ष्य-पूर्ति तक सँभाला था।

इस अपील की हस्तलिखित प्रति के अन्त में मो क गांधी वल्लभभाई पटेल और जमनालाल बजाज के तीन हस्ताक्षर हैं और तीनों स्याही से किये हुए हैं। नीचे २४-८-'४ सेवाग्राम लिखा हुआ है। इस अपील की गांधीजी द्वारा पेंसिल से लिखी गयी मूल पाण्डुलिपि को मैंने अपने संग्रह में यत्नपूर्वक रखा है।

•

१३२. सन् १९२७-२८ में विदेशी कपड़े के बहिष्कार के सिलसिले में मैंने गांधीजी के साथ बहुत पत्र-व्यवहार किया था। मेरे पत्रों के मुद्दों को उद्धृत करके गांधीजी अपने साप्ताहिकों में उनकी चर्चा किया करते थे। ऐसा एक लेख २२ मार्च १९२८ के 'नवजीवन' में छपा था।

इन चर्चाओं में गांधीजी कम-कम से यह सुझाते रहते थे कि किस तरह कपड़ा-मिलों के मालिक और उनके संचालक भी खादी के आन्दोलन में और उसके प्रचार में सहायक हो सकते हैं। साथ ही खादी के विरुद्ध जो आपत्तियाँ की जाती थीं उनका विश्लेषण भी करते थे और प्रत्येक प्रामाणिक देशप्रेमी तथा गाँवों में रहनेवाली दरिद्रनारायणस्वरूप करोड़ों-करोड़ जनता के प्रति सहानुभूति रखनेवाले मिल-मालिकों और उद्योगपतियों से वे किस प्रकार की सहायता और सहयोग की अपेक्षा रखते हैं एवं अपने हितों को अधिक आँच न आने देकर भी उद्योगपति देश की विशाल ग्राम जनता के हित के लिए क्या-क्या कर सकते हैं और किस हद तक जा सकते हैं इस बात को समझाते रहते थे और वैसे मार्ग सुझाया करते थे।

अक्सर इस सबके लिए मैं और गांधीजी का मिल कर मेरे चर्चा-पत्र निमित्त बनते थे।

१३३ सन् १९३१ की कराची-कांग्रेस में जाने के लिए गांधीजी बम्बई आये थे। उस समय मिल के कपड़े पर लगी एक्साइज ड्यूटी को हटा लेने की मिलों की माँग के सिलसिले में कुछ मुख्य मिल-मालिकों ने गांधीजी से समय माँगा था और वे उन्हें अपनी बात समझाने के लिए उनसे मिले थे। मिलवालों की इच्छा यह थी कि इस चर्चा के बाद गांधीजी अपने 'यंग इण्डिया' साप्ताहिक में मिलों के पक्ष में लिखें।

मिल के कपड़े की एक्साइज-ड्यूटी

गांधीजी के साथ मेरा भी सम्बन्ध रहा, इसे वे भी जानते थे। उन्होंने सोचा कि मैं गांधीजी को समझाऊँगा तो उनका काम आसान हो जायगा।

"मिलें बहुत ही नुकसान उठा रही हैं, इसे सिद्ध करनेवाला एक 'कम्पेरेटिव स्टेटमेंट' गांधीजी को दिखाओ और समझाओ।

गांधीजी ने उनकी सारी बातें सुनीं। 'यंग इण्डिया' में लेख भी लिखा। साथ ही यह भी लिखा कि वे स्वयं मिल-मालिकों से क्या क्या आशा रखते हैं।

इस लेख के सम्बन्ध में गांधीजी की महत्ता का उल्लेख किये बिना मैं रह नहीं सकता। उन्होंने वर्तमान मुद्दों को मुझसे समझ लेने के बाद लेख लिखा था। फिर भी उसे छपने के लिए देने से पहले उन्होंने उसको मेरी 'मंजूरी' के लिए भेजा था।

१७४ सर होमी मोदी बरसों तक बम्बई के मिल-मालिक-मण्डल के अध्यक्ष रहे। एक बार मुझसे कहने लगे—

'गांधीजी मिलों के इतने खिलाफ क्यों हैं?'

'आप गलती कर रहे हैं। गांधीजी यह कभी नहीं चाहते कि हिन्दुस्तान की कपड़ा-मिलों का नाश हो।'

'अगर बात जैसी आप कहते हैं वैसी ही है तो बड़ी धारा-सभा में मिलों के उत्पादन पर लगी एक्साइज ड्यूटी को हटाने का जो प्रस्ताव आनेवाला है, यदि गांधीजी उसके पक्ष में लेख लिखकर उसका समर्थन करें, तो सरकार पर उसका बहुत असर पड़े और देश की मिलों को बड़ी राहत मिले। क्योंकि ब्रिटिश सरकार तो देश-विदेश को और सारी दुनिया को यही समझाना चाहती है कि हिन्दुस्तान की मिलों पर लगी एक्साइज ड्यूटी न हट जाने के

१३२. सन् १९२७-२८ में विदेशी कपड़े के बहिष्कार के सिलसिले में मैंने गांधीजी के साथ बहुत पत्र-व्यवहार किया था। मेरे पत्रों के मुद्दों को उद्धृत करके गांधीजी अपने साप्ताहिकों में उनकी चर्चा किया करते थे। ऐसा एक लेख २५ मार्च १९२८ के 'नवजीवन' में छपा था।

इन चर्चाओं में गांधीजी क्रम-क्रम से यह सुझाते रहते थे कि किस तरह कपड़ा-मिलों के मालिक और उनके संचालक भी खादी के आन्दोलन में और उसके प्रचार में सहायक हो सकते हैं। साथ ही खादी के विरुद्ध जो आपत्तियाँ की जाती थीं उनका विश्लेषण भी करते थे और प्रत्येक प्रामाणिक देशप्रेमी तथा गाँवों में रहनेवाली दरिद्रनारायणस्वरूप करोड़ों-करोड़ जनता के प्रति सहानुभूति रखनेवाले मिल-मालिकों और उद्योगपतियों से वे किस प्रकार की सहायता और सहयोग की अपेक्षा रखते हैं एवं अपने हितों को अधिक आँच न आने देकर भी उद्योगपति देश की विशाल आम जनता के हित के लिए क्या-क्या कर सकते हैं और किस हद तक जा सकते हैं इन बातों को समझाते रहते थे और वैसे मार्ग सुझाया करते थे।

अक्सर इन सबके लिए मैं और गांधीजी को लिखे गये मेरे चर्चा-पत्र निमित्त बनते थे।

१३३. सन् १९३१ की कराची-कांग्रेस में जाने के लिए गांधीजी बम्बई आये थे। उस समय मिल के कपड़े पर लगी एक्साइज ड्यूटी को हटा लेने की मिलों की माँग के सिलसिले में कुछ मुख्य मिल-मालिकों ने गांधीजी से समय माँगा था और वे उन्हें अपनी बात समझाने के लिए उनसे मिले थे। मिलवालों की इच्छा यह थी कि इस चर्चा के बाद गांधीजी अपने 'यंग इण्डिया' साप्ताहिक में मिलों के पक्ष में लिखें।

गांधीजी के

खादी शुरू नहीं हुआ। इसलिए कि उससे मिल का कपड़ा सस्ता होगा और उसकी तुलना में खादी ज्यादा महँगी दिखाई पड़ेगी।

'मैं गांधीजी का रुख जान लेने की कोशिश करूँगा। वैसे मुझे तो विश्वास है ही।

मैंने गांधीजी से सम्पर्क किया। मेरी बात सच ही थी। मिलों पर से एक्साइज-ड्यूटी के हटने पर गांधीजी को कोई आपत्ति नहीं थी। मुझसे सब पहलुओं की सारी वस्तु-स्थिति भलीभाँति समझ लेने के बाद उन्होंने इस सम्बन्ध में अपने अंग्रेजी साप्ताहिक हरिजन में एक सुन्दर लेख लिखा।

जैसा कि उनका तरीका था उन्होंने अपना यह लेख प्रकाशित करने से पहले मेरे पास देखने को भेजा था। मेरी अनुमति के बाद ही वह प्रकाशित हुआ।

मिल-मालिक खुश-खुश हो गये।

हर कोई जानता है कि इसके कुछ समय के बाद ही मिलों पर लगी एक्साइज-ड्यूटी हट गयी।

१७ जैसे-जैसे खादी का प्रचार और उपयोग लोकप्रिय होता गया वैसे-वैसे मिलों ने भी मोटा कपड़ा बुनकर खादी के नाम से बेचना शुरू किया। मिल के सूत की हाथ-करघे पर बनी साड़ियाँ उन दिनों दक्षिण में सब जगह बहुत चलती थीं और उनकी बड़ी तारीफ थी। जहाँ देखो वहाँ लोग हाथ-करघे की बनी चीजें ही माँगते थे। इन साड़ियों की बड़ी मिल की साड़ियों से अलग छाप पर भी लगती थी।

इस लोकप्रियता का ध्यान में रखकर मिलों ने भी वैसी ही बुनाई करनी शुरू कर दी। अब हमारी सोलापुर-मिल की ओर से,

गांधीजी के

है इस बात को वे असीम धैर्य के साथ क्रम-क्रम से समझाते रहते थे। उद्योगपति भी गांधीजी को अपने हितैषी और नम्र सलाहकार के रूप में मानते थे और मिल-उद्योग विनिमय तथा भारतीय जहाजरानी आदि विषयों से सम्बन्ध रखनेवाली सरकारी नीति के विरुद्ध अपनी रक्षा करने के प्रयत्नों में गांधीजी की सलाह और सहानुभूति प्राप्त करने की दृष्टि से वे मुझे एक कड़ी समझते थे। मैं ऐसे अनेक प्रसंगों का वर्णन कर सकता हूँ।

●

१७८ गांधीजी भारत की जहाजरानी के उत्थान में भी बहुत दिलचस्पी लेते थे। बुनाई की तरह ही जहाजरानी का उद्योग भी भारत में प्राचीन समय से ही बहुत विकसित हुआ था और ब्रिटिश हुकूमत ने कपड़े की बुनाई की तरह ही जहाजरानी का भी अपने हितों के पक्ष में व्यवस्थित रीति से नाश किया था। ये उद्योग फिर से चैतन्य हो और इसका विकास हो तथा इस क्षेत्र में लगभग शत प्रतिशत बपौती की-सी सत्ता रखनेवाली अंग्रेज ब्रिटिश कम्पनियों का एकाधिकार समाप्त हो इसके लिए समय समय पर अपने साप्ताहिकों में अपने विचार प्रकट करके गांधीजी भारतीय जहाजी कम्पनियों को प्रोत्साहित करते और हिम्मत बंधाते थे। वे सरकारी नीति की हमेशा कड़ी टीका करते।

गांधीजी ने भारत की जहाजरानी पर 'यंग इण्डिया' में जो लेख लिखा था उसमें उन्होंने ब्रिटिश जहाजरानी को giant (दैत्य) और भारतीय जहाजरानी को dwarf (वामन) कहा था। भारत के जहाजी व्यापार को मिटाकर ब्रिटिश जहाजरानी को समृद्ध

ता० ३० जनवरी के दिन गांधीजी की हत्या हुई। उसी दिन दोपहर को जब मैं गांधीजी से मिला तो मैंने फिर इस विषय की चर्चा चलायी थी और उन्होंने मनुबहन से कहा था कि वे मेरा यह पत्र और इस प्रकरण से सम्बन्ध रखनेवाले दूसरे पत्र उनके डेस्क पर रख दें। लेकिन दैव को यह मंजूर न था कि वह पत्र पूरा पढ़ा जाय क्योंकि उसी शाम गांधीजी की हत्या हो गयी। बाद में मनुबहन ने मुझसे कहा था कि गांधीजी उस पत्र को आधा ही पढ़ सके थे। इसके बाद अपने उक्त पत्र की प्रतिलिपि मैंने कुमारप्पा जी को भेजी और उन्हें लिखा कि अगर वे स्वयं सिन्धिया कम्पनी के रेकार्ड देखना चाहें तो खुशी से देख सकते हैं।

मेरा उक्त पत्र पढ़ने के बाद उन्होंने मुझे लिखा कि मेरे पत्र में दिये गये स्पष्टीकरण से उन्हें सन्तोष हुआ है और इस सम्बन्ध में उन्हें कम्पनी के रेकार्ड आदि अधिक कुछ देखना नहीं है।

●

१८१ सन् १९२४-२५ की बात है। सरकार ने विनिमय की दर बदलने का बिल बड़ी धारा-सभा में पेश किया और उस पर देश में भारी चर्चा चली। ब्रिटिश व्यापारी भारतीय व्यापारियों को नुकसान पहुँचाकर रुपये की कीमत १ शिलिंग ६ पेंस कराना चाहते थे। बम्बई के धनकुबेर एक ... ... इसके विरोध में बड़े किये गये आन्दोलन के अगुआ थे। उन्होंने मेरे पिताजी से कहा

"इसके सम्बन्ध में गांधीजी का स्टेटमेण्ट (वक्तव्य) निकलवाया जा सके तो बड़ा काम हो। आप 'शान्ति' को साबरमती भेजिये।

१८० मलाबार, बामरा आदि जहाजी कम्पनियों का प्रबन्ध बम्बई के सेठ सूरजी वल्लभदास करते थे। स्व० श्री जे० सी० कुमारप्पा उनके मित्र थे। वे सूरजीभाई के साथ विलायत भी शिपिंग-कान्फ्रेंस में गये थे। वहाँ से लौटने पर उन्होंने 'हरिजन' में हमारी सिन्धिया कम्पनी के विरुद्ध यह आक्षेप किया था कि सिन्धिया कम्पनी बड़ी होने के कारण वह भारत की छोटी जहाज-रानी को अपनी जेब में रखना चाहती है। लेकिन असल में हकीकत यह थी कि सिन्धिया कम्पनी के संचालक स्व० वालचन्द सेठ छोटी जहाजी कम्पनियों का पक्ष लेकर भारत-सरकार से बराबर झगड़ते रहते थे। उनका यह कार्य इस हद तक बढ़ा कि उस समय की भारत-सरकार के व्यापार-मंत्री सर जोसेफ भोर को जिनके अधीन जहाजरानी का विभाग भी था इस मामले का अवार्ड देना पड़ गया था कि जिसके अनुसार हिन्दुस्तान के पश्चिमी तट पर चलनेवाली छोटी जहाजी कम्पनियों को जहाजी काम का ८ फी सदी और ब्रिटिश इण्डिया, मोगल लाइन तथा सिन्धिया को केवल २ फी सदी हिस्सा मिला था।

कुमारप्पाजी के हमले के विरोध में मैंने गांधीजी से शिकायत की। लिखा: 'हम तो छोटी जहाजी कम्पनियों को हमेशा सँभालते रहे हैं। फिर भी हमारे पक्ष को बिना जाने-समझे कुमारप्पाजी इस तरह कहते और लिखते हैं, इससे हमारे साथ अन्याय होता है। आवश्यक समझें तो आप श्री नरहरिभाई के समान किसी को सिन्धिया के काम का सारा इतिहास देख जाने के लिए कहिये और उनसे इस विषय की रिपोर्ट मांगिये।'

गांधीजी ने मेरा पत्र कुमारप्पाजी को भेजा और उनका जो जवाब आया सो मुझे भेजा। मैंने फिर उसका जवाब लिखा।

अपने हाथ में रखकर बैठी हुई अनगिनत विदेशी कम्पनियाँ (अधिकतर ब्रिटिश) अपने नाम के साथ 'इण्डिया लिमिटेड' शब्द जोड़कर बड़ी मुस्तैदी के साथ अपने को देशी (भारतीय) कम्पनियों के रूप में पेश करने लगीं। मैं गांधीजी का ध्यान इन सब कार्यवाहियों के विरुद्ध भी खींचता रहता था और उनसे पत्र-व्यवहार करके उन्हें ऐसी कम्पनियों के नामों की सूचियाँ भेजा करता था। इस सम्बन्ध में भी गांधीजी ने और महादेवभाई, चन्द्रशंकर शुक्ल आदि ने 'हरिजन' पत्रों में लेख लिखे थे।

१८३ पिछले विश्व-युद्ध में ब्रिटिश-हुकूमत ने हिन्दुस्तान को उससे पूछे बिना ही युद्ध में झोंक दिया। गांधीजी ने इसके विरोध में हाल ही प्राप्त प्रान्तीय सत्ता और मंत्रि-पद को ठुकराकर सविनय अवज्ञा-आन्दोलन शुरू करने की हिमायत की। फलतः सन् १९४२-४४ का 'भारत छोड़ो' और 'करेंगे या मरेंगे' आन्दोलन सारे देश में भड़क उठा। हुकूमत ने भी गांधीजी को कांग्रेस-वर्किंग कमेटी के उनके साथियों को और सारे देश के हजारों-लाखों कांग्रेसियों को ताबड़तोड़ गिरफ्तार करके जेलों में बन्द कर दिया साथ ही गांधीजी को और कांग्रेस को देश-विदेश में और सारी दुनिया में बदनाम करने के लिए जबरदस्त प्रचार किया। किसी मामले में पीछे मुड़कर देखा ही नहीं!

हुकूमत लाखों भर्ती लोगों को युद्ध-स्थल में लगाकर लड़ाई को तो बराबर आगे चलाती रही लेकिन हिन्दुस्तान के समझदार तबकों और उद्योगपतियों का पूरा सहयोग उसे प्राप्त है, यह दिखाने के लिए वाइसराय लिनलिथगो ने भारतीय उद्योगपतियों के एक 'अशासकीय' शिष्ट-मण्डल को इंग्लैण्ड-अमेरिका भेजने की व्यवस्था की।

मैंने कहा — मैं समझा नहीं सकूँगा और गांधीजी बिना समझे स्टेटमेण्ट नहीं देंगे।

स्वर्गीय बालचन्द्र काका उन दिनों इण्डियन मर्चेण्ट्स चेम्बर के अध्यक्ष थे। वे मेरे साथ चलने को तैयार हुए। चेम्बर के मंत्री स्व. जमनादास मेहता भी साथ थे। हम अहमदाबाद पहुँचे। सेठ अम्बालाल साराभाई के घर ठहरे। अम्बालाल सेठ भी हमारे साथ आश्रम तक चलने को तैयार हुए। बोले —

"हम शंकरलालभाई (बैंकर) और अनसूयाबहन को भी अपने साथ ले चलें।

इस तरह एक बड़ा-सा काफिला गांधीजी के पास पहुँचा।

गांधीजी ने शान्तिपूर्वक उनकी बातें सुनीं। फिर बोले —

जिस तरह तीन धूर्तों ने मिलकर ब्राह्मण से उसकी बछिया छीन ली थी मुझे तो आपका यह मामला भी कुछ वैसा ही मालूम होता है। लेकिन कागज-पत्र छोड़ जाइये। सब कुछ पढ़-समझकर बाद में स्टेटमेण्ट दूँगा।

दिया तो सही लेकिन देर से दिया। इस बीच बड़ी धारा-सभा में सरकारी बिल पास हो चुका था।

१८२. विदेशी कपड़ों का बहिष्कार, स्वदेशी मिल-उद्योग आदि के आन्दोलनोंवाले उन पुराने वर्षों में बम्बई में 'स्वदेशी लीग' नाम का एक संगठन बना हुआ था। उसके कार्य-क्षेत्र और उसकी प्रवृत्तियों के बारे में भी मैं प्रायः गांधीजी के साथ पत्र-व्यवहार द्वारा चर्चा किया करता था। इसके अतिरिक्त उन बाद के वर्षों में इस बात के चिह्न प्रकट होने लगे कि राज-सत्ता की बागडोर भारतीय जनता के हाथ में आयगी तो इस देश के व्यापार-उद्योग का पूरा ठीका

इस सिलसिले में भारतीय व्यापारी-संघ को अथवा दूसरे चेम्बरों और मण्डलों में से किसीको कुछ पूछा नहीं गया ! शिष्ट-मण्डल में जानेवालों का चुनाव भी सरकार ने ही कौमी आधार पर किया । सरकार की पसंदगी से बाहर का एक भी सदस्य उसमें नहीं था । शिष्ट-मण्डल के मंत्री के रूप में भी एक सरकारी अधिकारी को ही पसन्द किया गया था लेकिन किसी कारणवश बिलकुल आखिरी वक्त पर उसे बदलकर बिड़लाजी के 'ईस्टर्न इकॉनॉमिस्ट' नामक पत्र के सम्पादक डॉ. लोकनाथन् को सम्मिलित किया था ।

इस प्रकार यद्यपि यह शिष्ट-मण्डल पूरी तरह सरकारी ब्राण्ड (छाप) का था फिर भी दिखाया कुछ ऐसा गया था मानो इसमें जानेवाले उद्योगपति ब्रिटेन-अमेरिका के उद्योगपतियों के साथ सहयोग बढ़ाने के लिए अपनी ही इच्छा और प्रेरणा से स्वयं जा रहे हों ।

इस शिष्ट-मण्डल में गांधीजी के प्रसिद्ध प्रशंसक और धनवान उद्योगपति बिड़लाजी भी थे ही । सबसे अधिक संताप करनेवाली बात तो यह थी कि जिस समय देश के सारे राष्ट्रीय नेता और हजारों-हजार कार्यकर्ता जेलों में बन्द थे ऐसे समय 'स्वेच्छा से' जानेवाले एक 'अशासकीय' शिष्ट-मण्डल को इस देश के प्रतिनिधि के रूप में प्रस्तुत करके ब्रिटिश हुकूमत दुनिया की आँखों में धूल झोंकना चाहती थी ।

शिष्ट-मण्डल के सदस्यों ने भी अपनी पत्रकार-परिषदा में और वक्तव्यों आदि में इस बात का दावा किया कि वे स्वयं अपने खर्च से और 'अशासकीय' रूप से जा रहे हैं । और बिड़लाजी ने तो इंग्लैण्ड में 'गार्डियन' वालों को दी गयी अपनी एक मुलाकात में यह

इस सारे षड्यन्त्र की पोल खोलने की दृष्टि से मैंने समाचार पत्रों में एक वक्तव्य प्रकाशित करवाया। उसमें मैंने इस शिष्ट मण्डल की प्रेरणा और रचना के मूल में निहित सरकार की पूरी कार्रवाई का पर्दाफाश किया और वाइसराय तथा उद्योग-मंत्री आदि के अपने ही समय-समय पर दिये गये वक्तव्यों को उद्धृत करके किया। और लिखा कि जिस समय सारे देश की जनता अपनी स्वतन्त्रता के लिए अपने जीवन-मरण की अन्तिम लड़ाई लड़ रही थी उस समय विदेशी हुकूमत का हस्तक अथवा पिट्ठू बनकर गया हुआ इस प्रकार का शिष्ट-मण्डल इंग्लैण्ड-अमेरिका के साथ जो कुछ भी सौदे और समझौते करेगा उन्हें स्वतन्त्र भारत कभी मंजूर नहीं कर सकेगा।

मैंने गांधीजी के 'आशीर्वाद' वाली बात को भी चुनौती दी और कहा कि वे 'आशीर्वाद' व्यक्तिगत रूप से बिड़लाजी की यात्रा की सफलता की कामना करनेवाले ही हो सकते हैं उनके मिशन की सफलता के लिए नहीं। गांधीजी के आशीर्वाद हिन्दुस्तान के नंगों-भूखों के हितों की रक्षा के लिए हैं या उन्हें हानि पहुँचाने के लिए?

मेरे इस वक्तव्य का देश-विदेश में सब कहीं अच्छा प्रभाव पड़ा। मेरे नाम इस आशय के पत्र भी आये। बाद में शिष्ट मण्डल के एक सदस्य ने मुझसे कहा था कि मेरा वक्तव्य विलायत में उन लोगों के लिए काफी बाधक बना था। उन लोगों के बीच अन्दर-ही-अन्दर आपस की खींच-तान भी थी ही। प्रत्येक व्यक्ति ने जिनके काम जो उद्योग थे उन्हींके लिए जोर लगाया!

कुल मिलाकर इस मिशन को कोई खास सफलता नहीं मिली। वर्किंग कमेटी रिहा की गयी और उसके सारे सदस्य गांधीजी

का पानी भिन्न रखती। एक बार जिस आश्रम में इस प्रकार के टट्टी बन सकते थे उनमें टट्टी बन नहीं रहा था तो गांधीजी खुद ही उसे साफ करने बैठ गये। उस समय मैं वहीं था।

१८६. गांधीजी की आँखों के सामने गाँवों में रहनेवाले गरीब दरिद्रनारायण ही सदा बसे रहते थे। इन गाँवों को ध्यान में रख कर ही उनका सारा आयोजन और उनकी अर्थ-नीति बना करती थी। बिजली सेप्टिक टैंक आदि के उपयोग के विरुद्ध उन्हें सिद्धान्त की दृष्टि से कोई आपत्ति नहीं थी। उनके ध्यान में मुख्य बात यही रहती थी कि गाँवों के लोग इनका उपयोग सहज ही कर सकें और उनके लिए ये चीजें सरल और सस्ती हों। भाँति भाँति के गृह उद्योगों और दस्तकारियों का, जो गरीब-अमीर सबके दैनिक जीवन को सरल बनाने में और उनकी सुख-सुविधा तथा आरोग्य को बढ़ाने में सहायक सिद्ध हों, आविष्कार-संशोधन और सजीवन करने में उनकी रुचि असीम थी।

गांधीजी उन छोटे यन्त्रों, मशीनों अथवा कल-कारखानों के विरोधी नहीं थे जो रोजगारी (दैनिक मजदूरी) से मजदूरी करनेवाले मनुष्य की मेहनत को कम करके उसके उत्पादन को सरल-सीधा बनानेवाले हों और रात-दिन उसके हाथ-पैरों और दिल-दिमाग को नीरस भार ढोकर उस बेचारे ढोनेवाले मजदूर से कारीगर और कारीगर से कलाकार बनने में सहायक होते हों और जिनके कारण उसकी बुद्धि के और निर्माण-शक्ति के पनपने तथा विकसित होने की पूरी-पूरी गुंजाइश हो। वे हमेशा कहा करते थे कि सिलाई की सिंगर मशीन की खोज करनेवाले ने मनुष्य को सदा के लिए कठिन श्रम से बचाकर संसार का महान् उपकार किया है।

१८४   मैं खादी की तरह ही ग्रामोद्योगों को पुनरुज्जीवित करने के काम में भी जी-जान से दिलचस्पी लेता था। हाथ-कागज का उपयोग करता था यही नहीं बल्कि कम्पनी के सरकारी पत्र-व्यवहार में भी यथासम्भव उसीका आग्रह रखता था।

बिजली के मीटर के ज्ञान के साथ हाथ-कागज को बनाने में लगनेवाले औज़ारों में सुधार हुआ लेकिन इसके कारण कागज को सहज ही पहचानना सम्भव न रहा। मैंने गांधीजी से पूछा

'आप बिजली के उपयोग में विश्वास नहीं करते। लेकिन आश्रम के कुएँ पर बिजली से पम्प चलता है और हाथ-कागज में लोंदे की कुटाई (बीटिंग) भी बिजली से होती है। ऐसा क्यों?'

'हाथ की कुटाई में मनुष्य को हद से ज्यादा मेहनत करनी पड़ती है। हाथ के उद्योग का मतलब यह नहीं है कि धन-धान्य उत्पन्न करने में शरीर-श्रम की बचत करनेवाले साधनों की खोज न की जाय। जब मैसूर की तरह देश के हर गांव और हर झोंपड़े में बिजली पहुँचेगी तब घरेलू धन्धों में अथवा खेती में उसका उपयोग करने के विरुद्ध मुझे कोई आपत्ति नहीं होगी।'

१८५   गांधीजी एक मिकैनिक का दिमाग भी रखते थे। सन् १९२४ के कारावास के दिनों में उन्होंने यरवडा-चक्र की खोज की थी। सिलाई की सिंगर मशीन में और अधिक सुधार किस प्रकार हो इसके लिए तैयार नामधाम के साथ उन्होंने अपने सुझाव सिंगर कम्पनी को भेजे थे। सिंगर कम्पनी के बम्बई-कार्यालय के मैनेजर ने मुझसे यह बात कही थी।

गांधीजी कहा करते थे कि विदेशी घासलेट की अपेक्षा देश के अखाद्य वनस्पति-तेलों का उपयोग किया जाय तो इससे गरीबों

गांधीजी के

उनका विरोध उन यन्त्र-संयन्त्रों और आयोजनों से था जो मनुष्य को उसके स्थान से हटा देते हैं, सैकड़ों-हजारों को बेकार बनाकर उन्हें मशीन के स्क्रू की हालत में डाल देते हैं और जो बहुत बड़े पैमाने पर केन्द्रीकृत उत्पादन को बढ़ावा देते हैं। वे यह मानते और कहा करते थे कि इस प्रकार के आयोजन ४० करोड़ की घन संख्यावाले और उस दिशा में बड़ी तेजी से बढ़ते रहनेवाले राष्ट्र के लिए आत्मनाश की सामग्री है। आम लोगों की प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए उनके करोड़ों हाथ करोड़ों भुजाएँ और अरबों अंगुलियाँ काफी हैं, इसलिए रेलवे जहाज जैसे कुछ बड़े राष्ट्रीय उद्योगों के अलावा बाकी का सारा उत्पादन ग्राम अथवा सिण्डिकेलिज्म की तरह सारे देश में चारों ओर स्वतन्त्र मन बुद्धिवाले स्वाधीन मनुष्यों के हाथों उनके घर-आँगन में होना चाहिए।

१८७ इस प्रकार रोज रोज के अनेक उपयोग की चीजों और साधनों की मरम्मत के काम में अथवा उनकी खोज और उनके संशोधन के विषय में और ऐसी अन्य बातों को सोचने-समझने में उन्हें बड़ी दिलचस्पी थी। यह तो एक प्रसिद्ध ऐतिहासिक तथ्य है कि गांधीजी ने जेल में यरवडा-चक्र नामक चरखे की खोज की थी अथवा उसे सम्पूर्णता प्रदान की थी। दीया-बत्ती और लालटेन के मुँह अथवा उसकी बत्ती के सुधार पर या उसकी खोज-बीन पर, उसमें पानी जानेवाली हवा गैस अथवा गरम होने की व्यवस्था और निर्माण के मूल में विद्यमान वैज्ञानिक नियमों को समझने में वे घण्टों अपना समय बिताया करते थे। हमारे देश की स्त्रियों का जितना समय और जितनी शक्ति रोटियाँ बेलने में बरबाद होती है, उसे वे बिलकुल गैरजरूरी मानते थे और इस बात की हिमायत करते

गांवों में रहनेवाले गरीब लोग और उनकी घर-गृहस्थी आज जिस तरह अपनी जन्म-भूमि से उखड़कर शहरों में रहनेवाले बुद्धिजीवी वर्गों के शोषण का शिकार बनती है और चूर-चूर होती जा रही है उससे उसे बचाया जा सके जिससे लोगों की सारी प्राथमिक आवश्यकताएँ विकेन्द्रित रीति से घर-घर के उद्योग और उत्पादन द्वारा पूरी हो सकें देश स्वयंपूर्ण बन सके समूचे देश में घर-घर सम्पत्ति पैदा हो और वह देश के हर घर में बराबर बँटती रहे। ●

गांधीजी के

गाँवों में रहनेवाले गरीब लोग और उनकी घर-गृहस्थी आज जिस तरह अपनी जन्म-भूमि से उखड़कर शहरों में रहनेवाले बुद्धिजीवी वर्गों के शोषण का शिकार बनती है और चूर-चूर होती जा रही है उससे उसे बचाया जा सके जिससे लोगों की सारी प्राथमिक आवश्यकताएँ विकेन्द्रित रीति से घर-घर के उद्योग और उत्पादन द्वारा पूरी हो सकें देश स्वयंपूर्ण बन सके समूचे देश में घर-घर सम्पत्ति पैदा हो और वह देश के हर घर में बराबर बँटती रहे। ●

डॉक्टर ने उनके लिए मांसाहार की जरूरत बतायी। गांधीजी ने उसकी व्यवस्था करवा दी।

१९० मैं जब भी सेवाग्राम जाता अपने साथ पुस्तकें मौसमी फल और इसी तरह की कुछ चीजें ले जाया करता था। एक बार वहीं से प्राप्त ताजा स्ट्रॉबेरी ले गया था। भोजन के समय गांधीजी कहने लगे 'दक्षिण अफ्रीका छोड़ने के बाद आज इन्हें पहली ही बार देख रहा हूँ।'

१९१ हम दोनों जहाँगीरजी और मैं लगभग हर महीने एक साथ सेवाग्राम जाते थे। हमने सेवाग्राम में अपने लिए एक छोटा घर बनाने की बात भी सोची थी। योजना यह थी कि जब हम सेवाग्राम जायें तो उसमें रहें और जब हम न हों तब जिन मेहमानों के लिए गांधीजी चाहें उसका उपयोग हो। आश्रम की सीमा के बाहर [illegible] मेहमान-घर था। तय हुआ कि उसकी बगल में हमारा घर बने। गांधीजी ने स्वीकृति भी दी लेकिन यह जमीन जिनके हाथ में थी उनकी स्वीकृति नहीं मिली। फिर तो गांधीजी दुबारा कभी सेवाग्राम गये ही नहीं इसलिए यह मानकर कि जो हुआ ठीक ही हुआ हमने ईश्वर का आभार माना। हमने यह भी सोचा था कि जिन्होंने हमें जमीन देने से इनकार किया था उन्हें हम आभारसूचक पत्र लिखें।

१९२ मेरी दादी-माँ ने बरसों पहले नासिक के एक अस्पताल को दान दिया था। उसकी कुछ रकम बच गयी थी जो बीमारों-उपचार के काम के लिए अलग होकर पड़ी हुई थी। समय बीतने पर यह रकम ब्याज-सहित लगभग पाँच हजार तक पहुँची थी। इस बीच नासिक का अस्पताल सरकारी बन गया इसलिए यह सरकार की

गांधीजी के

चरखे की कोई बात हो तो वह गांधीजी को अच्छी लगे और मैं उसके लिए ललचाऊं।

महादेवभाई की भी अनुकूलता थी। मैंने गांधीजी से कहा :

"अगर आप एक बार चरखे की सब क्रियाओं का प्रदर्शन अपनी कॉमेण्टरी के साथ दें तो शान्तारामजी उसकी फिल्म मुफ्त में तैयार कर देंगे और उसे गांव-गांव में दिखायेंगे।"

"यह प्रस्ताव तुम्हारा नहीं है। लेकिन इसे लेकर आए हो तो इस बहाने कुछ सुन लो। मैं कौन सारे हिन्दुस्तान के एक-एक गांव में घूमा हूं? फिर भी लोग मुझे पहचानते हैं और लाखों लोगों ने चरखा चलाने के मेरे सन्देश को बिना मुझे देखे या सुने ही अपना लिया है। मैं तो दरिद्रनारायण का प्रतिनिधि हूं। विलायत में मुझसे एक जबरदस्त भूल यह हो गयी कि मैंने वहां अपना एक रेकार्ड उतरवाने दिया। इस पाप का पूरा प्रायश्चित मैं कभी नहीं कर पाऊंगा। दूसरों ने मुझे उसमें फंसा लिया था। इसी तरह इस मामले में भी मेरे आसपास के लोगों ने ही तुमको आगे किया है।"

१९५. बम्बई में सरदार वल्लभभाई पटेल का ७ वां जन्म-दिन मनाया जानेवाला था। उससे कुछ दिन पहले मैं सेवाग्राम गया था। अपने साथ गांधीजी का एक बड़ा-सा फोटोग्राफ ले गया था। मैंने उसे उनके सामने रखा और प्रार्थना की कि वे उस पर सरदार का नाम लिखकर अपना आशीर्वाद भी लिख दें। सुझाव के तौर पर कहा, "मैं इसे सरदार को उनकी जन्म-तिथि के दिन सुबह भेंट करना चाहता हूं।" गांधीजी ने सरदार के नाम के साथ आशीर्वाद लिख दिया।

"साथ में सरदार के जन्म-दिन की तारीख भी लिख दीजिये।"

पीसा जाय और उस चूर्ण का दही आदि बनाकर खाया जाय। सब जानते हैं कि गांधीजी आहार-सम्बन्धी प्रयोगों में बड़ी रुचि रखते थे। उन्होंने आश्रम में सोयाबीन के प्रयोग शुरू करवाये। अनुभव से पता चला कि उनमें प्रोटीन इतना अधिक है कि उसे पचाना कठिन हो जाता है। फिर उसकी गन्ध भी उग्र होती है। इस कारण खानेवाले के मन में उसके प्रति अरुचि उत्पन्न होती है।

इस प्रकार थोड़े ही समय में सोयाबीन का यह प्रयोग अपने आप बन्द हो गया।

१९९ सेवाग्राम में गांधीजी का शौचालय और दूसरी टट्टियाँ बहुत ही साफ रहती थीं लेकिन वे देहाती ढंग की थीं। उन पर उपयोग के बाद हर बार सूखी मिट्टी हमेशा भरपूर डाली जाती थी जिससे बदबू, मक्खी या मच्छर बिलकुल पैदा नहीं हो सकती थी। एक बार मैंने गांधीजी को सुझाया कि आश्रम में सब जगह सेप्टिक टैंकवाली टट्टियाँ बनना होनी चाहिए। मेरी दलील यह थी कि मलोत्सर्ग सम्पूर्ण वैज्ञानिक और आधुनिक रीति नहीं है। गांधीजी को ऐसा करने में आपत्ति नहीं थी। लेकिन उन्होंने कहा

"अगर कोई ऐसी सादी और सस्ती टट्टियाँ बनाकर दे कि जिन्हें बिलकुल गरीब ग्रामवासी लोग भी गांवों में अपने घरों के अन्दर बनवा सकें तो उनके उपयोग के विरुद्ध मैं बिलकुल आपत्ति नहीं करूँगा।

ये चर्चाएँ कुछ समय तक चलती रहीं। बाद में मैसूर के एक इन्जीनियर बंगलौर-निवासी श्री मोरिस फ्रिडमन (भारतानन्द) ने जो सेवा-निवृत्त होने के बाद सेवाग्राम में रहने लगे थे वैसा एक सेप्टिक टैंक तैयार कर दिया। गांधीजी ने उसे बिना किसी आना कानी के बनवाया और स्वयं उसका उपयोग करने लगे।

फिर भी वे गांधीजी के पास पहुँच ही गये।

गांधीजी ने बड़े शिष्टाचार के साथ उनका स्वागत किया। उनकी सारी बातें और दलीलें बड़े ध्यान के साथ धैर्यपूर्वक सुन लीं। लेकिन अन्त में दृढ़तापूर्वक अपनी यही राय प्रकट की कि इस तरह साम्प्रदायिक आधार पर बनने वाले चैम्बर बन्द होने चाहिए।

१९७. उन्हीं दिनों बम्बई के इण्डियन मर्चेण्ट्स चेम्बर के उपाध्यक्ष श्री हातम प्रेमजी नामक एक मुसलमान व्यापारी थे। चेम्बर की अपनी परम्परा के अनुसार जो उपाध्यक्ष होता था वही अगले साल अध्यक्ष बनता था। लेकिन चूँकि उस समय हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच खिंचाव चल रहा था इसलिए कुछ हिन्दू सदस्यों ने श्री हातम प्रेमजी को चेम्बर का अध्यक्ष चुनने के विरुद्ध एक हलचल शुरू की। एक कारण उनकी छोटी उम्र का भी दिया गया।

गांधीजी इस चेम्बर के एक पैट्रन (संरक्षक) थे। कोई एक सदस्य उनके पास पहुँच गये और उन्होंने इस सम्बन्ध में गांधीजी की राय जाननी चाही। गांधीजी इस कार्रवाई की जड़ में निहित भाव को तुरन्त ही ताड़ गये और उन्होंने अपनी यह राय दी "चेम्बर में जो परम्परा चली आ रही है उसे भंग करने का कोई कारण नहीं। परम्परा के अनुसार श्री प्रेमजी को ही अध्यक्ष के रूप में चुनना चाहिए।"

१९८. उन दिनों इन्हीं वर्षों में हमारे देश में सोयाबीन का प्रचार शुरू हुआ था। सोयाबीन में प्रोटीन की मात्रा अधिक है। सिफा-रिश की जाती थी कि सोयाबीन को पीसकर उसका दूध तैयार

गांधीजी के

छिलका साफ और उस दूध का दही आदि बनाकर खाया जाय। सब जानते हैं कि गांधीजी आहार-सम्बन्धी प्रयोगों में बड़ी रुचि रखते थे। उन्होंने आश्रम में सोयाबीन के प्रयोग शुरू करवाये। अनुभव से पता चला कि उसमें प्रोटीन इतना अधिक है कि उसे पचाना कठिन हो जाता है। फिर उसकी गन्ध भी उग्र होती है। इस कारण खानेवाले के मन में उसके प्रति अरुचि उत्पन्न होती है।

इस प्रकार थोड़े ही समय में सोयाबीन का यह प्रयोग अपने आप बन्द हो गया।

१९९ सेवाग्राम में गांधीजी का शौचालय और दूसरी टट्टियां बहुत ही साफ रहती थीं लेकिन वे देहाती ढंग की थीं। उन पर उपयोग के बाद हर बार सूखी मिट्टी हमेशा भरपूर डाली जाती थी जिससे बदबू, गन्दगी या मक्खी बिलकुल पैदा नहीं हो सकती थी। एक बार मैंने गांधीजी को सुझाया कि आश्रम में सब जगह सेप्टिक टैंकवाली टट्टियां बनवा लेनी चाहिए। मेरी दलील यह थी कि सर्वाधिक सम्पूर्ण वैज्ञानिक और आधुनिक रीति यही है। गांधीजी को ऐसा करने में आपत्ति नहीं थी। लेकिन उन्होंने कहा

"अगर कोई ऐसी सादी और सस्ती टट्टियां बनाकर दे कि जिन्हें बिलकुल गरीब ग्रामवासी लोग भी गांवों में अपने घरों के अन्दर बनवा सकें तो उनके उपयोग के विरुद्ध मैं बिलकुल आपत्ति नहीं करूंगा।

ये चर्चाएँ कुछ समय तक चलती रहीं। बाद में मैसूर के एक इन्जीनियर पोलैण्ड-निवासी श्री मॉरिस फ्रिडमन (भारतानन्द) ने जो सेवा-निवृत्त होने के बाद सेवाग्राम में रहने लगे थे वैसा एक सेप्टिक टैंक तैयार कर दिया। गांधीजी ने उसे बिना किसी आना-कानी के बनवाया और स्वयं उसका उपयोग करने लगे।

'सैण्ड पेपर'

२०० एक बार कोई एक बड़े राष्ट्रीय अधिकारी अपने परिवार और मित्रों के साथ गांधीजी के पास सेवाग्राम पहुँचने के लिए वर्धा से चले। रास्ते में मोटर बिगड़ गयी इसलिए उनका पूरा दल पैदल चलकर सेवाग्राम पहुँचा। पहले तो उक्त अधिकारी ने इस बात के लिए क्षमा माँगी कि मोटर के बिगड़ जाने से वे निश्चित समय पर पहुँच नहीं पाये।

गांधीजी 'मोटर को क्या हो गया था? क्यों रुक गयी?'

'मशीन में मोर्चा लग गया है। उसे छुड़ाने के लिए रेगमाल (सैण्ड पेपर) की जरूरत थी ड्राइवर के पास वह था नहीं। और यहाँ इस जंगल के बीच कहाँ मिलता? इसलिए हम पैदल चलकर आये।'

गांधीजी ने अपनी छोटी-सी मेज में से रेगमाल का एक छोटा टुकड़ा निकालकर अधिकारी के हाथ में रखा। उन सज्जन के आश्चर्य का पार न रहा। पूछा

'आप यह 'सैण्ड पेपर' किसलिए रखते हैं?'

'तकुआ घिसने के लिए।'

अधिकारी महोदय ने उस टुकड़े को सँभालकर अपने बटुवे में रखा। जब मुलाकात पूरी करके बाहर निकले तो कहने लगे

'मैं रेगमाल के इस टुकड़े का उपयोग नहीं करूँगा। महात्मा जी के साथ की इस मुलाकात की याद में हमेशा के लिए सँभालकर रखूँगा और अपने बच्चों के लिए विरासत में छोड़ता जाऊँगा।'

२०१ एक बार हाल ही निकले अखबार के एक गुजराती समाचारदाता गांधीजी से मिलने आये। पुरुषोत्तमदास के परिचितों में से थे। उन्होंने सुभाष उनका परिचय करा दिया। बापू उन्हीं

गांधी सेवाग्राम में जनमे थे ?

"ये भाई बापू से इण्टरव्यू करने आये हैं। आश्रम किस चिड़िया का नाम है, सो कुछ जानते नहीं। आप ही इन्हें सँभालिये !

उन भाई ने मुझसे पूछा : क्या गांधी सेवाग्राम में ही जनमे थे ? जमनालाल बजाज उनके बेटे होते हैं ?

बेचारे को आगा-पीछा कुछ मालूम ही न था !

गांधीजी ने उन्हें गुजराती में इण्टरव्यू देना शुरू किया। वे घबरा उठे ! खुरशेदबहन हाजिर थीं। बोलीं

"ये गुजराती नहीं जानते !

बाद में गांधीजी ने अंग्रेजी में चर्चा की।

संवाददाता ने अन्तर्जातीय मिश्र-विवाह अथवा ऐसे ही किसी विषय पर इण्टरव्यू ली थी।

२०२. श्री परचुरे शास्त्री नाम के एक कुष्ठरोगी सेवाग्राम आये थे। प्रसिद्ध बात है कि गांधीजी ने अपने यहाँ उनका स्वागत किया था और अपनी कुटिया के पीछे ही एक दूसरी कुटिया बनवाकर उन्हें उसमें रखा था। अक्सर उनके घाव धोने और पट्टी आदि बाँधने का काम गांधीजी खुद करते थे और उनके इलाज तथा उनकी खान-सँभाल आदि की फ़िक्र किया बड़ी बारीकी से रखते थे। सुबह-शाम बिना नागा उनके समाचार पूछा करते।

उन्हें धूप में सुलाते। उनकी मालिश करते और उनसे बातचीत तथा हँसी-मजाक करके उन्हें प्रसन्न रखते।

एक बार टहलकर आने के बाद गांधीजी आखिर में शास्त्रीजी की कुटिया पर गये। शास्त्रीजी बिलकुल दिगम्बर दशा में धूप में लेटे हुए थे। मेरे गले में कैमेरा था। गांधीजी को लगा कि मैं शास्त्रीजी का फोटो लेने की कोशिश में हूँ। बोले

'आभा के विवाह को दिसम्बर तक रोकने में कई कठिनाइयाँ देख रहा हूँ। उपवास मेरे नसीब में लिखा ही हो तो यही अच्छा है कि उससे पहले यह कार्य निपट जाय। तुम दोनों के और माँ-जी के भी प्रेम को मैं समझ सकता हूँ किन्तु तुम सब इस कठिनाई को समझ सकोगे। यदि आभा के पिता न आयें अथवा आने पर भी उन्होंने आग्रह न किया तो तुम और सुमति सहर्ष कन्यादान करना। लेकिन चूँकि तुम इतने निकट के बन गये हो इसलिए यह याद रखना कि तुम्हें आभा और कनु की सादगी का अनुकरण करना है। नहीं तो वे दोनों को खायेंगे। हम तो यही चाहते हैं कि यह अन्तर्प्रान्तीय और विजातीय विवाह हर तरह आदर्श सिद्ध हो!

दूसरे ही दिन एक और पत्र लिखा

"तुम्हें तार किया है मिला होगा? भाई अमृतलाल अपनी लड़की और छोटे लड़के के साथ आये हैं। सारा परिवार सहमत हो चुका है। अमृतलाल कहते हैं कि तुम कन्यादान खुशी से दे सकते हो। इसलिए सब कुछ सरल बन गया है। तुमको जहाँगीर जी को और जिन्हें लाओगे उनको यही ठहरा दूँगा। माँजी को कष्ट नहीं देना है। उनके तो आशीर्वाद ही पर्याप्त हैं।

असल में मेरी इच्छा यह थी कि यह विवाह गांधी-जिन्ना वार्तालाप के दिनों में बम्बई में ही हो जिससे मेरी दादी-माँ और दूसरे सगे-सम्बन्धी उपस्थित रह सकें। मेरे अन्तर्मन में एक लोभ यह भी था कि अगर इस विवाह में जिन्नासाहब को ला सकूँ तो लाऊँ। लेकिन उपर्युक्त परिस्थिति में विवाह आखिर सेवाग्राम में ही हुआ। हम दोनों और मेरी बहन मधुरी ही उसमें सम्मिलित हो पाये।

बस, यही एक मेरा पहला और अन्तिम कन्यादान था। विवाह-विधि पूज्य रविशंकर महाराज ने करवायी। कन्यादान में गांधीजी ने कन्या को केवल सूतमाला, एक जोड़ी खादी की चूड़ियां और एक जोड़ कपड़े ही मुश्किल से देने दिये। माथे में फूलों की वेणी भी बड़ी मुश्किल से लगाने दी। [illegible] यह कहकर कि 'इसे बिगाड़ना नहीं है' *उन्होंने मुझसे यह वचन लिया कि मैं विवाह के बाद भी* उसे कुछ देना नहीं। गांधीजी की इस आज्ञा को मैं आज तक पालता चला आ रहा हूं और बहन आशा जब कभी मेरे घर आती-जाती है तो उसे एक साड़ी, कपड़ा-जोड़ और रेल के टिकट के सिवाय और कोई चीज कभी देता नहीं हूं।

९० एक और मौके पर मैंने सेवाग्राम में गांधीजी से पूछा था : बहुतों का यह खयाल है कि आपका यह आश्रम तरह-तरह के मनुष्यों के नमूनों का अजायबघर अथवा 'मैड-हाउस' (पागलखाना) है। इस बारे में आपके क्या विचार हैं?

इस मैड-हाउस का सरदार कौन है? मैं ही या दूसरा कोई? तुम्हीं बताओ कि सेवाग्राम-आश्रम में सयाने लोग कितने हैं?

जितने विवाहित हैं। जैसे महादेवभाई, किशोरलालभाई, नरहरिभाई और आप।

अच्छा, यही सही। लेकिन इन सबका भी सरदार तो मैं ही हूं न? उस हालत में मैं सयानों का भी सरदार तो हुआ न? लेकिन मुझे तो ये दोनों उपाधियां समान रूप से प्रिय हैं।

इसके बाद बहुत गम्भीर होकर कहने लगे :

तुम्हारी बात सच है। यह आश्रम पागलों की प्रयोगशाला [illegible] रूप में पहचाना जाय तो इसमें मुझे छोटेपन का अनुभव नहीं

 गांधीजी के

होता। सचमुच ही मैं यहाँ भाँति-भाँति के प्रयोग करके जीवन के सत्यों का सन्धान करता हूँ। तुमने जिन तरह-तरह के नमूनों की बात कही है, उनके साथ मुझे दिन-रात अपने दिल-दिमाग को ठंडा रखकर व्यवहार करना पड़ता है, बस जाना होता है, ये सब मेरे प्रयोग ही हैं।

ऐसे तरह-तरह के नमूनों में से एक ही का वर्णन यहाँ करता हूँ। किसी एक धनी वैष्णव-परिवार की लड़की को उसके पिता पसन्द जगह ब्याहना चाहते थे, इसलिए वह गांधीजी के पास आकर रहने लगी थी। गांधीजी की कुटिया के पीछे रहती थी। सवेरे जल्दी उठकर नहाने-धोने के बाद फूलों के ढेर इकट्ठा करके पूजा किया करती। सारा दिन बार-बार गांधीजी के पास आकर उन्हें किसी न-किसी बहाने परेशान किया करती, इसलिए सब कोई उसे एक बड़ी झंझट समझते थे। एक दिन वह पूजा कर रही थी, तभी मैंने उसके दरवाजे में झाँककर देखा

'क्या कर रही हो?'

'कृष्ण भगवान् की पूजा कर रही हूँ।'

सुन मज़ाक सूझा।

'मुझको पाट पर बैठाकर क्यों नहीं पूजती? मैं भी तो यदुकुल का हूँ!'

उसने मुँह घुमाकर कहा

'आपके समान नास्तिक की पूजा नहीं हो सकती!'

ऐसी लड़की गांधीजी के भोजन की थाली लेकर आती। जब तक गांधीजी भोजन करते, उनके सामने बैठी रहती। फिर थाली उठाकर कुटिया के बाहर रख देती। भीड़ उसकी बला! पस्टो

जूठी थाली ज्यों-की-त्यों पड़ी रहती। अन्त में कस्तूरबा बेचारी उठकर ले जाती और माँजती!

ऐसी तो न जाने कितनी बहनें आया करती। महादेवभाई ने यह सब मुझसे कहा था। बोले "ये लड़कियाँ बापू के सामने दिन-भर हजार तरह की ऐंठ भरती बातें किया करती हैं पर यह एक थाली माँजने की परवाह इनमें से किसीको नहीं है! बेचारी बा को ही माँजनी होगी! इन सबको बचपनापन का नमूना न कहा जाय तो और क्या कहा जाय?

दूसरे प्रकार के नमूने भी थे। ऐसी एक बहन किसीके द्वारा भेजी गयी आश्रम में गांधीजी के पास आयी थी। बेचारी बिल्कुल बचपन ही में विधवा हो गयी थी। उसे पढ़ा-लिखाकर डॉक्टर बनाने की जिम्मेदारी गांधीजी ने मुझ पर डाली थी। ठेठ परीक्षा के दिन ही बेचारी के भाई गुजर गये। तिस पर भी परीक्षा देने गयी। फेल हो गयी। कहने लगी

अब नहीं पढ़ूँगी।

'गांधीजी ने तुझको डॉक्टर बनाने की जवाबदारी मुझ पर डाली है इसलिए अब तू सात बार भी फेल होगी तो भी मुझे पढ़ाना है और तुझे पढ़ना है। दूसरा कोई चारा नहीं।

आखिर वह पास हुई और डॉक्टर के नाते अपना काम भली भाँति चलाने भी लग गयी।

एक और भी जलगामी मुस्लिम-परिवार की बहन थी। गांधीजी की अनन्य भक्त। लेकिन जिस तरह पागल माँ अपने अतिशयतापूर्ण लाड़-प्यार से अपने बालक को आकुल-व्याकुल कर देती है, उसी तरह वह गांधीजी को अक्सर परेशान किया करती थी। गांधीजी की सेवा-टहल करने में जितनी बेजोड़ उतनी ही हठ और उपवास

करने में थी! सेवाग्राम की ११६–१८ डिग्री की गरमी में भी दिनभर या रातभर बिना पलक मारे हमेशा गांधीजी पर पंखा झला करती थी। आज भी उत्तर हिन्दुस्तान में गांधीजी द्वारा निर्देशित रचनात्मक कार्यक्रमों को चलानेवालों में उसका पहला नम्बर आ सकता है।

ऐसी बहुतेरी सेवा-परायण बहनें न जाने क्यों गांधीजी के पास हमेशा इकट्ठा होती रहती थीं। कारण शायद यह था कि उन्हें और कहीं उतनी विश्रान्ति नहीं मिलती थी जितनी यहाँ मिल जाती थी। मैंने तो ऊपर केवल दो-तीन नमूनों का ही वर्णन किया है। ●

विशेषताएँ और दिनचर्या

रोगियों से रोज मिला करते !

२०६ काम का कितना भी बोझ क्यों न हो गांधीजी बीमारों के कुशल-समाचार पूछने में और मृत्यु के अवसर पर शोक-समवेदना के लिए जाने में कभी चूकते न थे। मेरी दादी-माँ मोटर की दुर्घटना में घायल हुईं मेरे पिताजी की प्रोस्टेट गाँठ का और मेरा हर्निया का ऑपरेशन हुआ मेरी पत्नी सुमतिबाई को नागपुर की यात्रा से लौटने के बाद चेचक निकली इनमें से प्रत्येक अवसर पर स्वास्थ्य समाचार के बारे में पत्र लिखकर अथवा स्वयं पूछ-परछ करके उन्होंने हमारी चिन्ता की थी । वैसे भी जब-जब मुझे किसी भी काम से अथवा राजी-खुशी के ही पत्र लिखते-लिखवाते तो भी नियमानुसार मेरी दादी-माँ के और मेरी गोदी बुआ के कुशल-समाचार हमेशा पूछा करते।

विवाह जन्म-दिन आदि के अवसरों पर भी बहुतों को आशीर्वाद के पत्र भेजा करते। मेरी बहन मधुरी के विवाह के अवसर पर उनका आशीर्वादात्मक पत्र आया था और मेरी वर्षगाँठ के दिन पर भी उनके आशीर्वाद व पत्र समाचार वर्षों तक बराबर मिलते रहे थे।

२०७ यह तो प्रसिद्ध ही है कि बोलने और लिखने में गांधीजी कम-से-कम शब्दों का उपयोग करते थे और हमेशा नपा-तुला बोलते

लिफाफे पर पता खुद ही लिखते थे। मेरा पूरा पता अथवा पोस्ट-ऑफिस के उपयोग के लिए पर्याप्त अंग्रेजी पता भी लिखते थे। मेरे पत्रों पर 'सिन्धिया कम्पनी बम्बई' लिखा करते थे। एक बार मेरा नाम और बम्बई लिखने के बाद बाकी लिखना भूल गये और पत्र डाक में छोड़ दिया। ऐसा पत्र शायद ही मिलता है। बाद में जब मैं मिला तो मैंने पूछा

"मेरे उस पत्र का जवाब मुझे नहीं मिला।"

"मैंने जवाब जरूर लिखा है।"

यह वही पत्र था जिस पर, जैसा कि ऊपर कहा है, पूरा पता लिखना रह गया था।

बाद में देर से ही क्यों न हो लेकिन वह पत्र मुझे मिल गया था।

गांधीजी के नाम सारी दुनिया से पत्र आते थे। उनके जवाब लिखने होते थे। इसके अलावा दूसरे कामों का ढेर तो जमा ही रहता था। फिर भी निजी सम्बन्ध रखनेवाले लोगों के पत्रों के उत्तर तो वे यथासम्भव लौटती डाक से ही भेजते थे। उनका समूचा मौनवार (सोमवार) इस प्रकार के पत्रों के जवाब देने के लिए और 'हरिजन' पत्रों के निमित्त लेख लिखने के हेतु ही अक्सर रिजर्व रहता था। हमारे देश में शायद ही प्रतिष्ठित लोग ऐसे निकलेंगे जो पत्रों का उत्तर देने में कई-कई दिन लगा देते हैं और बहुत व्यस्तता का तथा समय की कमी का कारण देते हैं। गांधीजी के निजी पत्र-व्यवहार में ऐसा क्वचित् ही होता था। मृत्यु के सिलसिले में समवेदना के अथवा साहस बँधानेवाले पत्र वे तुरन्त लिखते थे। किसीके बीमार पड़ने पर उसकी बीमारी की

और गांधीजी कभी गफलत की वजह से ऐसे पत्रों की पीठ पर ही दूसरों के नाम पत्र लिख डालते! 'बाम्बे क्रॉनिकल' के सम्पादक श्री ब्रेलवीजी के विरुद्ध किसीने तीखी शिकायत और आक्षेपों से भरा एक पत्र गांधीजी को भेजा था। ध्यान न रहने से गांधीजी ने उसीकी पीठ पर ब्रेलवीजी को पत्र लिख भेजा!

कहा जाता है कि इसी कारण सरदार पटेल बाद के वर्षों में गांधीजी को लिखे गये अपने महत्त्व के पत्र वापस मँगवा लिया करते थे।

पैकेटों और पार्सलों के आने पर उनके धागे और सुतली आदि को बिना काटे ध्यानपूर्वक ज्यों-का-त्यों खोल लिया करते और उन्हें मोटे कागज या गत्ते के टुकड़े पर लपेटकर पुनः काम में लेने के लिए अपनी कलम रखने की छोटी पेटी में सँभालकर रखे रहते।

किफायतशारी की यह आदत उनमें इस हद तक पहुँच चुकी थी कि भोजन करने अथवा सोकर उठने के बाद पीकदानी में कुल्ला करके हाथ-होंठ धोने में अथवा नाक साफ करने में आधे लोटे से अधिक पानी शायद ही कभी खर्च करते थे। कहीं भी नुकसान होता देखते अथवा किसी भी चीज को बरबाद होते देखते तो उनसे यह सहा नहीं जाता था।

०८. गांधीजी दोनों हाथों से लिखते थे। दाहिना लिखते-लिखते थक जाता तो बायें से लिखते। बायें हाथ के अक्षर अधिक साफ होते थे और आसानी से पढ़े जा सकते थे।

गांधीजी गुजराती, नागरी, उर्दू, अंग्रेजी, बंगला, तमिल, तेलुगु आदि अनेक लिपियाँ जानते थे। हरिजनों के लिए पाँच रुपये लेकर नाम या अपना हस्ताक्षर जो देते थे तो अक्सर उसी लिपि में देते थे जो [illegible] की होती थी।

 गांधीजी के

36 ચિ. શાન્તિકુમાર,

આજે તમે ત્રણ વાર
આવ્યો છો ઘણા દિવસથી
તમારો કાગળ નથી
સપ્ટેમ્બરના છેલ્લા
અઠવાડીઆમાંયે નહોતો
તમે બધા કેમ છો? બાળુ
કેમ છે? ગાડી બહેન કેમ છે
તમે નિ:શ્ચિન્ત થયા?
નવું વર્ષ સુખમાં જાઓ

૨-૧૧-૩૨ બાપુના
આશીર્વાદ

4

पूछताछ तत्काल कराते थे और बीमारी के सिलसिले में मतलब की सूचनाएँ भी देते थे।

२०९. गांधीजी फाउण्टेनपेन का उपयोग करते थे। एक के बिगड़ने पर मुझसे दूसरा लाकर देने को कहते। मैंने प्रस्ताव किया कि नये के बदले में वे मुझे पुराना दे दिया करें। कहने लगे

तुम्हारी तरह व्यापार करनेवाला तो दीवाला ही निकालेगा।

जी नहीं। जिन दिनों आठवें एडवर्ड स्कूल में पढ़ते थे उन्होंने अपने पिता पांचवें जार्ज को एक पत्र लिखा 'मुझे कुछ पौण्ड की जरूरत है भेजिये।' पिता ने इनकार किया और फजूलखर्ची के विरोध में एक शिक्षाप्रद जवाब लिखा। लड़के ने 'इंग्लैण्ड के राजा का अपने युवराज के नाम लिखा पत्र' के नाम से उस पत्र को बेचकर खासी रकम जमा की। फिर अपने पिता को लिखा 'मैंने तो आपसे कुछ ही पौण्ड मांगे थे लेकिन आपने नहीं दिये। अब तो मैंने आपका पत्र बेचकर एक खासी बड़ी रकम खड़ी कर ली है। इसलिए अब कुछ समय तक मुझे पैसों की कमी नहीं रहेगी।'

गांधीजी के ऐसे पुराने पेनों में से कई तो लोग मुझसे उनकी स्मृति के रूप में ले गये। केवल एक बचा है।

फाउण्टेनपेन के खराब होने पर लोग उसे संग्रह की दृष्टि से ले लेते। इसलिए कुछ समय तक उन्होंने बर्रू की कलमों का भी उपयोग शुरू किया था। होल्डर का उपयोग भी करते थे। होल्डर की निब के घिस जाने पर उसके पिछले हिस्से की लकड़ी को छीलकर उसकी कलम बना लेते और उससे लिखा करते थे।

गांधीजी के

बीच-बीच में ये सारे प्रयोग चलते रहते थे फिर भी चूंकि गांधीजी को दिन-रात लिखने से फुरसत नहीं रहती थी इसलिए अन्त में उन्हें फिर फाउन्टेनपेन पर ही आना पड़ता था।

२१० गांधीजी सबके साथ एक ही पंगत में भोजन करने बैठते लेकिन बहुत ही धीमे-धीमे खाते। सब खाकर उठ जाते बर्तन मांजकर चल जाते पर स्वयं अकेले बैठे खाते रहते। चाहे अपनी कुटिया में हों चाहे दूसरे गांव में हों अथवा यात्रा में हों चाहे वाइसराय के महल में बैठे हों कहीं भी हों हर जगह अपनी उसी धीमी गति से और हमेशा की रीति से खाते थे और बातचीत करते रहते थे।

२११ यों तो गांधीजी स्त्री-पुरुष के बीच किसी तरह के भेद का व्यवहार नहीं करते थे लेकिन भोजन के समय और प्रार्थना के समय दोनों को अलग बैठाते थे। एक बार किसीने पूछा

"क्या पति-पत्नी भी यहां एक साथ नहीं बैठ सकते जैसे अंग्रेजों के भोज में बैठते हैं?"

"नहीं।

लेकिन उन्होंने इसके कारण का खुलासा नहीं किया।

२१२ प्राकृतिक उपचारवाले सोडा-बाय-कार्ब (खाने का सोडा) को बहुत हानिकारक मानते हैं लेकिन गांधीजी उसे बहुत चाहते थे और हमेशा उसका उपयोग किया करते थे। मैं अक्सर इस ओर उनका ध्यान खींचा करता था। उत्तर में वे कहते

"मैं जानता हूं कि प्राकृतिक उपचारवाले सोडे को पसन्द नहीं करते। जो कुछ भी हो मेरी प्रकृति को तो यह बहुत अनुकूल पड़ता है।

२. दाहिने हाथ की लिखावट

बीच-बीच में ये सारे प्रयोग चलते रहते थे फिर भी चूंकि गांधीजी को दिन-रात लिखने से मिरबत रहती थी इसलिए अन्त में उन्हें फिर फ्लटस्टेनपेन पर ही आना पड़ता था।[1]

२१० गांधीजी सबके साथ एक ही पंगत में भोजन करने बैठते लेकिन बहुत ही धीमे-धीमे खाते। सब खाकर उठ जाते बर्तन मांजकर चले जाते पर स्वयं अकेले बैठे खाते रहते। चाहे अपनी कुटिया में हों चाहे दूसरे गांव में हों अथवा यात्रा में हों चाहे वाइसराय के महल में बैठे हों कहीं भी हों हर जगह अपनी उसी धीमी गति से और हमेशा की रीति से खाते थे और बातचीत करते रहते थे।

२११ यों तो गांधीजी स्त्री-पुरुष के बीच किसी तरह के भेद का व्यवहार नहीं करते थे लेकिन भोजन के समय और प्रार्थना के समय दोनों को अलग बैठाते थे। एक बार किसीने पूछा

'क्या पति-पत्नी भी यहां एक साथ नहीं बैठ सकते जैसे अंग्रेजों के भोज में बैठते हैं ?'

'नहीं।'

लेकिन उन्होंने इसके कारण का खुलासा नहीं किया।

२१२ प्राकृतिक उपचारवाले सोडा-बाय-कार्ब (खाने का सोडा) को बहुत हानिकारक मानते हैं लेकिन गांधीजी उसे बहुत चाहते थे और हमेशा उसका उपयोग किया करते थे। मैं अक्सर इस ओर उनका ध्यान खींचा करता था। उत्तर में वे कहते

"मैं जानता हूं कि प्राकृतिक उपचारवाले सोडे को पसन्द नहीं करते। सो कुछ भी हो मेरी प्रकृति को तो यह बहुत अनुकूल पड़ता है।"

उन्हें शहद भी पसन्द था और पाली हुई मधुमक्खियों के शहद का उपयोग वे हमेशा करते थे। नये आये हुए शहद की जाँच करनी होती तो उसे थोड़ा चम्मच में लेकर चखते। फिर चम्मच को चाटकर और बिलकुल साफ करके ही धोने को देते।

२१३ आहार के प्रयोग रोगों की चिकित्सा घरेलू अथवा कुदरती इलाज गृह-उद्योग चरखे का सुधार आदि-आदि कई मामलों में गांधीजी की गहरी दिलचस्पी थी। इन विषयों से सम्बन्ध रखने वाली जानकारी प्राप्त करने और पुस्तकों आदि का पता लगाकर उन्हें प्राप्त करने और भेजने के लिए वे मुझे हमेशा लिखते रहते। मैं तदनुसार सारी व्यवस्था करता।

पुस्तकों में भी 'साइन्स एण्ड आर्ट ऑफ लिविंग' 'ब्रेड्-मेकिंग रेसीपिस' आदि पुस्तकें भेजने की बात मेरे ध्यान में रही है। एक बार बम्बई में रहनेवाली किसी अमरिकन अथवा पारसी महिला को जो डबल रोटी बनाने में निपुण थी उन्होंने आश्रम में भेजने के लिए मुझे लिखा था। जब वे न जा सकीं तो गांधीजी ने मुझे लिखा कि मैं उनसे मिलकर इस बात की जानकारी लूँ कि बिना मोयन डाले भी डबल रोटी हलकी किस तरह बनती है अथवा इस विषय की पुस्तकों की सूची उनसे प्राप्त करूँ और भेजूँ।

१४ खाने-पीने के नियमों व्रतों और उपचार आदि में उनकी बड़ी रुचि थी। कैसे भी काम में क्यों न डूबे हों बड़े-से-बड़े राज-धुरन्धर के साथ बातचीत क्यों न कर रहे हों अथवा आश्रम की कार्य समिति के मुखियाओं के साथ चर्चा करने में लगे हों अगर इसी बीच कोई छोटा आश्रमवासी बालक अथवा बालिका [illegible] आप और पूछ

'बापूजी ! आज मैं गुलाब लूँ या एनिमा लूँ ?'

तो गांधीजी चलती चर्चा के बीच उसे तुरन्त उत्तर देते पूछ-ताछ करते और ब्योरेवार सूचनाएँ देते ।

खिलौनों से खेलने की उमरवाले बालक भी गांधीजी के चलते काम-काज के बीच उनके पास उनसे कुछ पूछने या शिकायत करने पहुँच जाते थे । अथवा यदि वे कोई टूटा-फूटा खिलौना लाये हों तो गांधीजी तुरन्त उसकी मरम्मत करने बैठ जाते और उसे ठीक करके दे भी देते !

२१ चाहे बम्बई में हों चाहे बाहर किसी गाँव में हों या यात्रा कर रहे हों जहाँ कहीं भी होते हर जगह गांधीजी शाम को प्रार्थना के बाद हरिजन-कोष और हस्ताक्षर आदि से जितनी भी रकम इकट्ठा होती उसका हिसाब और ब्योरा पूछ लेते । प्रार्थना में आये हुए पैसों में तांबे का एक-एक पैसा कितनी संख्या में आया है इसके बारे में वे शाम को बिना चूके पूछ लेते थे । कहा करते कि गरीब का दिया हुआ एक-एक पैसा हजार रुपयों से ज्यादा कीमती है !

२२ जब किसी काम के सिलसिले में दोनों पक्ष समान महत्व के मालूम होते और निर्णय करने में परेशानी खड़ी होती तो वे अक्सर सिक्का उछालकर देखते और सिक्का चित आता या पट उस पर निर्णय देते तदनुसार निश्चिन्त होकर आचरण करते । बहुतों को यह अच्छा न मालूम होता । वे गांधीजी से कहते कि इस तरह धातु के एक टुकड़े को अथवा किसी जड़ वस्तु को मनुष्य अपना काजी बनाये इसमें उसकी बुद्धि का दीवालियापन है । लेकिन गांधीजी अपनी इस नीति पर डटे रहते । वे कहते "मनुष्य स्खलनशील (fallible) है । वह अपनी ही अक्ल या होशियारी पर मुनहसर

रह इसमें उसका मिथ्याभिमान, गर्व और राग-द्वेष भरा रहता है। इसलिए उसके हाथों गलत निर्णय होने की अधिक सम्भावना रहती है। इसकी तुलना में सिक्का उछालकर निर्णय प्राप्त करने में वह अपनी बात का फैसला भगवान् पर छोड़ देता है और इस प्रकार अपनी नम्रता और ईश्वर-श्रद्धा का इकरार करता है। ऐसा करके वह अपनी बात भगवान् को ही सौंप देता है। सिक्के ने जो फैसला दिया उसे भगवान् का ही आदेश मानकर मनुष्य बिना किसी बोझ भार या पछतावे के निश्चिन्त भाव से अपना काम करने के लिए आगे बढ़ता है।

२१७ गांधीजी, कस्तूरबा और महादेवभाई ने अपने जीवन काल में जिन वस्तुओं का निजी तौर पर उपयोग किया था अथवा जो उनके बाद उनके पवित्र अवशेष या स्मृति के रूप में संग्रह करने योग्य थीं, ऐसी कई चीजें मेरे पास समय-समय पर इकट्ठी हुई हैं और आज वे मेरे संग्रह में हैं:

(१) गांधीजी अपने कच्छ (लँगोटीनुमा छोटी धोती) पर सूत की एक डोरी कमर से बांधा करते थे; उसमें की एक डोरी।

( ) प्रार्थना से पहले [illegible] की शान्ति के समय जो माला [illegible] उसमें की एक तुलसी की माला।

( ) [illegible] के दिनों में [illegible] पर गांधीजी ने अपने [illegible] दी हुई उनकी [illegible] पुस्तक।

( ) गांधीजी के [illegible] द्वारा बनवाया हुआ [illegible]।

( ) [illegible] गांधीजी का [illegible] [illegible]

(६) मेरे नाम लिखे गये गांधीजी के कोई ८ पत्र जिनमें अधिकतर उन्होंने हाथों लिखे हुए हैं। कुछ ही टाइप किये हुए हैं

(७) गांधीजी के उपयोग की एक शाल जिसे वे आगा खान महल के जेल में किये गये उपवासों के दिनों में ओढ़ते थे। मैंने यह शाल उनसे माँग ली थी। उपवास के बाद जब कनुभाई गांधी को आगा खान-महल से छुट्टी दी गयी तो गांधीजी ने यह शाल उनके साथ मेरे लिए भेजी थी। उन्होंने कनुभाई को ताकीद की थी कि शाल को एक-दो बार अच्छी तरह धोकर और साफ करके ही मुझे दें

(८) कस्तूरबा का आगा खान-महल के जेलवाला तुलसी का गमला जिसे गांधीजी ने मुझे सौंपा था। जब समय पाकर इस गमले का असल तुलसी का पौधा सूख गया तो उसकी जगह मैंने दूसरा लगवाया था और सूखे हुए पौधे की लकड़ी के मनके तैयार करवाकर उनकी तुलसी की माला बनवायी थी। बाद में एक दिन वह माला मैंने गांधीजी को पहनने के लिए दी और फिर संग्रह के विचार से वापस ले ली।

इसके अतिरिक्त नीचे लिखी वस्तुएँ मेरे संग्रह में और हैं :

(१) गांधीजी के अग्नि-संस्कार के समय का बाकी चन्दन बच गया था। यथास्वरूप जानकीदेवी बजाज द्वारा उसमें बनवायी गयी छोटी-छोटी मालाओं में से एक माला

(२) स्वर्गीय देवदासभाई से प्राप्त गांधीजी की भस्म

(३) प्रभुदास से प्राप्त आगा खान-महल में हुए कस्तूरबा के अग्नि-दाह की भस्म

(४) ऐसी ही महादेवभाई की भस्म जो मुझे श्री कमलनयन बजाज की ओर से मिली थी

(५) महादेवभाई की मृत्यु के बाद उनकी देह को नहलाते समय सुशीलाबहन नैयर ने जिस रूमाल से उनका मुँह पोंछा था वह रूमाल।

यों तो स्वयं गांधीजी द्वारा काते गये तरह-तरह की बनावटों-वाले चरखे आदि भी मैंने इकट्ठा किए थे लेकिन वे अब रहे नहीं। किन्तु मेरी दादी-माँ हर साल पवित्रा एकादशी के लिए हाथ-कते सूत का पवित्रा बनवाने के निमित्त पुराने समय से ही जिस चरखे पर काता करती थीं वह चरखा आज तक मेरे संग्रह में मौजूद है।

●

गांधीजी की दिनचर्या

२१८. [गांधीजी की रहन-सहन दिनचर्या और नित्य की प्रवृत्तियों के विषय में स्वाभाविक रीति से ही बहुत-कुछ लिखा गया है। अनेक लोगों ने अपनी-अपनी मुलाकातों के समय अथवा मुकाम के वक्त जो कुछ देखा सो लिखा है। जिन दिनों गांधीजी मुंबई में हमारे घर आकर ठहरते थे उन दिनों की उनकी दिनचर्या की थोड़ी-बहुत जानकारी ऊपर दी जा चुकी है। फिर भी उनके नित्य के कार्यक्रमों की सिलसिलेवार जानकारी यहाँ एक ही जगह देने का प्रयत्न किया है। उनकी दिनचर्या का यह क्रम वे वर्धा के निकट सेगांव उर्फ सेवाग्राम में आकर बसे उसके बाद का और खासकर सन १९३८ से १९४२ के बीच का है।]

गांधीजी खुले आसमान के नीचे अथवा बारिश के दिनों में खुले बरामदे में मसहरी तनी हुई लकड़ी की चौकी पर अथवा पलंग पर सोया करते थे। चौकी अथवा पलंग सिरहाने की तरफ ६ इंच ऊँचा रखा जाता था क्योंकि गांधीजी का रक्तचाप ऊँचा रहता था।

३ कस्तूरबा गांधीजी तथा महादेवभाई की समाधियां
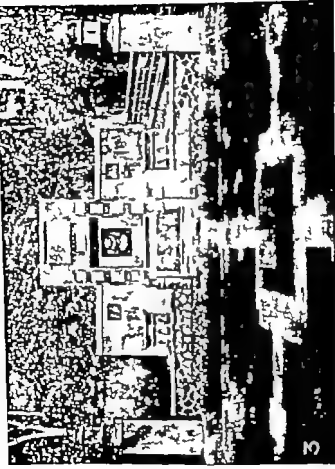
वे पिछली रात को लगभग ३½ बजे जाग जाते थे। 'हे राम!' के उच्चारण के साथ कुछ देर माला फेरते थे। उसके बाद बाथरूम में लघुशंका करके बीटन पर बिस्तर से लगे एक स्टूल पर रखे हुए पानी से लोहे के छोटे तसले में कुल्ला करके दतौन करते थे। दतौन पिछली रात को कूटकर कूची की शक्ल में तैयार करके रख दी जाती थी। उस पर कोयले की बुकनी लेकर वे उससे दांत मांजते और उसे मसूड़ों पर मलते थे। बाद में दतौन को चीर कर उससे जीभ साफ करते थे।

दतौन के बाद तुरन्त ही १६ औंस उबले पानी में शहद और सोडा-बाय-कार्ब डालकर तथा प्याले को सैफ्टिन से पकड़कर चम्मच की मदद से उसे बड़े चाव के साथ पीते थे।

बाद में आश्रम की सामूहिक प्रार्थना में देर होती और कोई बहुत जरूरी पत्र या लेख लिखने का काम बाकी होता तो उतने समय के लिए लालटेन के उजाले में लिखने बैठते।

सवेरे की प्रार्थना की पहली घंटी ४ बजे बजती। दूसरी ४-१५ पर। इसके बाद वे प्रार्थना में आकर बैठते। प्रार्थना ४-२० पर शुरू होती। आखीर-आखीर में अक्सर जब वे बहुत थके होते थे तो सुबह की आश्रम प्रार्थना उनके सोने के स्थान पर ही होती थी और वे स्वयं लेटे-लेटे ही सबके साथ प्रार्थना करते थे। कस्तूरबा की मृत्यु के बाद उनकी मृत्यु-तिथि के दिन अर्थात् हर २२वीं तारीख को सुबह की प्रार्थना के अन्त में पूरी गीता पढ़ी जाती थी।

प्रार्थना के बाद वे पत्र लिखते-लिखाते और महत्व के लेख आदि लिखने होते तो लिखते। कभी-कभी फिर सो भी जाते थे और थोड़ा आराम कर लेते थे। कुछ देर के बाद उठकर टहलने निकल पड़ते। गर्मियों में सुबह ६ बजे और जाड़ों में

७ बजे निकलते थे। साथ में कुछ आश्रमवासियों के अलावा बाहर से मिलने के लिए आये हुओं में से जिन्हें टहलते समय बात करने का वक्त दिया होता वे लोग भी रहते थे। टहलकर लौटने पर गांधीजी आश्रम में जो भी कोई बीमार होते उनमें से हरएक से बिना चूके मिलते तथा उनके समाचार पूछते। गांधीजी की कुटिया के पूर्व में थोड़ी दूर पर एक खेत में मीराबहन ने अपनी एक कुटिया बनायी थी वहाँ भी रोज चलकर जाया ही जाते।

वापस लौटकर चप्पल उतारने के बाद कुटिया के चबूतरे पर बैठ जाते। बा के जीवन-काल में वे ही कपड़े का टुकड़ा लेकर उनके पैरों में लगी धूल पोंछा करती थीं। इसके बाद वे अन्दर जाकर अपनी बैठक पर बैठते और सुबह का नाश्ता लेते थे।

नाश्ते में बकरी का तपाया हुआ दूध लेते थे जिसमें खजूर अथवा ऐसी ही दूसरी कोई चीज पड़ी रहती थी। बाद में बड़े सवेरे उठकर किये हुए काम के बारे में कुछ देखने-करने या सुधारने को होता तो उसमें लग जाते अन्यथा सीधे ही मालिश कराने चल जाते।

गांधीजी प्रतिदिन सवेरे नहाने से पहले कोमल धूप में मरते की बाड़ करके लेट जाते और तेल से सारे शरीर में मालिश करवाते। मालिश पूरे ४५ मिनट चलती। मालिश के चलते प्रायः काम काज की सूचनाएँ देते लिखवाते और कभी-कभी इन्टरव्यू भी देते अथवा मालिश शुरू होने के बाद १ मिनट के अन्दर ही गहरी नींद में सो जाते। मालिश सम्पूर्ण शास्त्रीय और वैज्ञानिक पद्धति से करवाते थे और इसके लिए आश्रमवासियों में से कुछ निश्चित भाई-बहन मालिश की सारी विधि अथवा शास्त्र सीखकर तैयार हुए थे। उन्हींमें से कोई-न-कोई उनकी मालिश किया करता था।

पूनावाले डॉ. दीनशा महेता जैसे निष्णातों में से कोई मौजूद होता तो मालिश वही करता। अक्सर अपने को मालिश का निष्णात कहलानेवाले लोग भी आते थे लेकिन ऐसे लोगों की मालिश अधिकतर एकाध बार के अनुभव के बाद बन्द हो जाती थी!

यात्रा में दिना में या बाहर के किसी मुकाम पर प्रायः मनुबहन गांधी ही मालिश किया करती थी। जब गांधीजी गरम पानी के टब में बैठे होते तो मनुबहन अक्सर सेफ्टी रेजर से उनकी हजामत भी बना दिया करती थी। जब खुद ही हजामत बनाते तो आईने का उपयोग कभी न करते। सेफ्टी रेजर का उपयोग इस तरह करते कि कहीं कोई खूंटी शायद ही रह पाती फिर भी बाद में सब तरफ अंगुली फेरकर देख लिया करते। कोई कमी नजर आती तो उसे दुरुस्त कर लेते।

गांधीजी के बाल भी आश्रमवासी ही काट दिया करते थे। हाथ-पैर के नाखून तो गांधीजी स्वयं अपने हाथों हमेशा अधिकतर चाकू से अथवा कभी-कभी कैंची से काट लिया करते थे। मूंछें भी अपने हाथों ही छांट लेते थे। कभी कोई पूछता कि आप आईने का उपयोग क्यों नहीं करते तो वे कहते

यही हूं गामी को दिखाने के लिए तुम तो हो ही न?

नहाते समय बड़ी देर तक टब में बैठे या लेटे रहते अक्सर वहीं सो भी जाते!

सब कहीं हमेशा ही उनका यह आग्रह रहता था कि पाखाने की सफाई घर भर की सफाई की तुलना में सबसे अधिक होनी चाहिए। घर पर वे हमेशा कमोड का अथवा कमोड की तरह के पाखाने का उपयोग करते थे। बड़ी देर तक कमोड पर बैठे रहते अखबार पढ़ा करते और प्रायः बहुत महत्व के विचार और निर्णय

भी नहीं करते। इसका एक कारण कदाचित् यह भी था कि सारे दिन में निश्चिन्तता का और पूरे एकान्त का लाभ इसी एक स्थान पर उन्हें मिलता था।

शुरू के वर्षों में गांधीजी अधिकतर आश्रम के मुख्य रसोईघर के ओसारे में सब आश्रमवासियों और मेहमानों के साथ एक ही पंगत में भोजन के लिए बैठा करते थे। कभी-कभी जब काम का बोझ अथवा मिलनेवालों की संख्या अधिक होती थी तो कुटियावाली अपनी बैठक पर ही भोजन कर लिया करते थे। उनका आहार नियमित सात्विक और प्राकृतिक उपचार के हिमायतियों के ढंग का रहता था। उबला हुआ साग, बकरी का दूध, खाखरा (सख्त रोटी), मौसमी फल आदि चीजें लेते थे। जब तक कस्तूरबा रहीं वे बीच-बीच में गुड़-पापड़ी या बकरी के बचे हुए दूध का खोआ अथवा पेड़ा बनाया करती थीं। बापू कभी-कभी ऐसी चीजें ले लिया करते थे। खाने-पीने की प्रत्येक वस्तु समय-समय पर पहले से निश्चित किये हुए प्रमाण में तौल के नाप से ठीक नपी-तुली ही दी जाती थी। स्वास्थ्य ठीक न होने पर सबसे पहले खाने-पीने में कमी करके अथवा फेर-फार करके ही उसे ठीक कर लेने का प्रयत्न करते थे। जब काम का बोझ बहुत ज्यादा होता तो वे एक बार का भोजन छोड़ दिया करते।

आम तौर पर भोजन के समय मेहमानों को पंगत में अपने पास ही बैठाते और अपने थाल की चीजों में से उन्हें कुछ-न-कुछ दिया करते। इसके अलावा भोजन करनेवालों की विशिष्ट रुचि को ध्यान में रखकर परोसनेवालों को तदनुसार सूचित करते रहते।

भोजन के बाद थोड़ा आराम करते। साधारणतया ठीक

गांधीजी के

२५ *मिनट में ही उठकर बैठ जाते। फिर पीनक के तमसे में मुस्करा* करके अपना काम करने लगते।

जब सेवाग्राम में होते तो गर्मी के मौसम में दोपहर के समय गन्ने का १६ औंस रस खूब गरम करवाकर पीते। बाहर किसी जगह होते तो १६ औंस गरम पानी में ताड़ के गुड़ की चाशनी अथवा ताड़-गुड़ ही घोलकर पीते। सबमें नींबू और सोडा-बाय कार्ब तो रहता ही। दोपहर के समय जहाँ तक सम्भव होता शहद नहीं लेते थे।

गांधीजी की कुटिया १ फुट से कम ऊँची कुर्सी पर मिट्टी की दीवारों और देसी नलिया के छप्परवाली थी। वह अन्दर-बाहर मिट्टी से लिपी रहती। उसके एक तरफ एक छोटा ओसारा बना हुआ था। एक ही छोटा कमरा था जिसमें एक ओर स्नान-घर था। स्नान-घर के और गांधीजी की बैठक के पीछे भी पर्देनुमा दीवारें थीं। स्नान-घर की पर्देवाली दीवार पर सुनहरी रंग की रेशम की तरह मुलायम लिपाई पर मीराबहन द्वारा मिट्टी से उठाये गये खजूर आदि के दो-तीन चित्र थे। बगल में आगा खान-महल के उपवास के समय का वहाँ से साथ लाया गया 'हे राम!' वाला एक पत्ता टँगा रहता था। गांधीजी की बैठक की दायीं ओर दायें-बायें बाँस के गोले एक-एक हाथ लम्बे दो-तीन खम्भोंवाली एक नन्ही-सी खिड़की थी।

पर्देवाली दीवार से टिकाकर लगा हुआ चौरस सफेद खादी के गद्दे से ढँका लकड़ी का एक पटिया खड़ा रखा जाता था और उसके सामने चटाईवाली फर्श पर एक छोटी डेढ़ फुट चौड़ी गद्दी बिस्तर की तरह खड़ी बिछी रहती थी। गांधीजी उसी पर बैठते थे। खिड़की के पास एक नन्हा-सा स्टूल रखा रहता था जिस पर

पेन्सिलों के पांच इंच लम्बे एक-दो टुकड़े कलम चाकू कैंची रबड़ आदि चीजें रखी रहती थीं। सामने और बायें स्नान-घर की तरफ खजूर की चटाइयां बिछायी रहती थीं। उन पर मुलाकातियों और कार्यकर्ताओं आदि की मुलाकातें की जाती थीं।

गांधीजी के मुँह के सामने की दीवार में बायीं ओर प्रवेश द्वार था। मिलने आनेवाले उसी तरफ से अन्दर आते थे। गांधीजी की पीठ के पीछेवाली गद्दी और पिछली दीवार के दरवाजे के बीच की जगह में बायीं ओर गांधीजी का मंत्रिमण्डल बैठा करता था। सन् १९४२ के पहले इस जगह महादेवभाई, किशोरलालभाई, राजकुमारी अमृतकौर, डॉ सुशीला नैयर आदि बैठते थे।

प्यारेलालजी कनुभाई गांधी वगैरह कुटिया के बिलकुल पीछे बने एक दूसरे घर में अधिक बैठते थे। टेलीफोन टाइपराइटर, फाइलों की आलमारियाँ आदि सारा सामान इस घर में रहता था। भाई कनु नारायण परशुराम टाइपिस्ट आदि यहीं बैठते थे और गांधीजी की कुटिया के पिछले दरवाजे से यहां के काम-काज के लिए आते-जाते रहते थे। जब सन् १९४४ में गांधीजी आगा खान-महल के जेल से छूटकर सेवाग्राम आये तो महादेवभाई और कस्तूरबा के बिना सब-कुछ बहुत सूना-सूना लगता था।

अपनी बैठकवाली गद्दी पर पलथी मारकर बैठने के बाद फुलस्केप-आकार के लकड़ी के एक पटिये को घुटने पर रखकर खादी पेंसिल अथवा फाउण्टेनपेन से सादे हलके अखबारी कागज के पैड पर गांधीजी बड़े अक्षरों में लिखा करते थे। उनके अक्षर पहली दृष्टि में भटकानेवाले होते हुए भी सुवाच्य रहते थे। वे यहीं कातते थे और भोजन के बाद उसी जगह २५ मिनट सो लेते थे।

गांधीजी के

मुलाकातें

गांधीजी देश के बड़े-बड़े नेताओं की प्रसिद्ध विदेशी पादरियों अथवा राजनीतिज्ञों या प्रत्येक प्रान्त के छोटे-बड़े राजनीतिक सामाजिक अथवा रचनात्मक क्षेत्र में काम करनेवाले कार्यकर्ताओं को यहीं अपनी बैठक के सामने फर्श पर बिछी खजूर की चटाई पर बैठकर उनसे बातचीत किया करते थे। आम तौर पर मुलाकातें तीसरे पहर तीन से पाँच के बीच हुआ करती। कांग्रेस की कार्य समिति के सदस्य नेहरूजी राजाजी मौलाना राजेन्द्रबाबू और सब प्रान्तों के बड़े नेता इन्हीं चटाइयों पर बैठकर गांधीजी से मिलते और चर्चा करते थे। मुलाकात के समय प्रायः गांधीजी अपने चरखा-यज्ञ पर कातते रहते थे।

वर्धा-सेवाग्राम की कड़ी गरमी में दोपहर के समय गांधीजी खेत की कपड़छन की हुई काली मिट्टी को गीली करवाकर उसकी एक इंच मोटी पट्टी प्लास्टर की तरह [illegible] अपने सिर पर रखे रहते थे और वैसी ही पट्टी पेट पर भी रखा करते थे। पेट पर तो बारहों महीने रखते। रात में भी रखते। मिट्टी के प्रयोग पर उन्हें कमाल का विश्वास था। बुखार में और पेट आदि के दूसरे कई रोगों में वे अन्य प्राकृतिक उपचार के रूप में लोगों को साफ काली मिट्टी का प्रयोग भी इस या उस रीति से हमेशा करते-कराते रहते थे।

मुलाकात के लिए आनेवाले लोगों के लिए उस समय की पाबन्दी के मामले में गांधीजी बहुत ही चौकस रहते थे। एक मिनट का भी फर्क कभी पड़ने नहीं देते थे। मुलाकाती छोटा आदमी हो या बड़ा नेता अपने हाथ का काम निपटाकर वे निश्चित समय पर स्वयं तैयार हो ही जाते।

पहनते थे जिन्हें सुबह-शाम टहलकर लौटने के बाद पैरों के साथ ही या अथवा दूसरे अन्तेवासी पोंछकर रखा करते थे। टहलने जाते समय गांधीजी अपने हाथ में एक लम्बी पतली लाठी रखते थे। इसके अलावा आश्रमवासी अथवा अन्तेवासी बालिकाओं में से जो उनके साथ चलती होती उनके कन्धों पर हाथ रखकर चला करते। इस तरह गांधीजी की लाठी बनने के लिए लड़कियों में हमेशा होड़ा-होड़ी होती रहती। कई बार गांधीजी की लाठी उनसे छीनकर दो-दो लड़कियाँ उनकी जिन्दा लाठियाँ बनकर उनके अगल-बगल चला करतीं। गांधीजी उन्हें यह सब करने देते। ऐसा हमेशा हुआ करता था। यह ऐतिहासिक घटना सुप्रसिद्ध है ही कि मृत्यु के समय मनुबहन और आभा गांधी उनकी दोनों तरफ थीं और उन्हींके हाथों में 'हे राम!' कहकर गांधीजी ने अपना शरीर छोड़ा था।

• • •

यों तो गांधीजी की दिनचर्या अथवा दिनक्रम देने के सबसे अधिक प्रमाणभूत अधिकारी उनके अन्तेवासी ही माने जायेंगे फिर भी चूंकि मैं गांधीजी के पास हमेशा आया-जाया करता था और उनकी दिनचर्या तथा विशेषताओं को निकट से देखने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ था इसलिए उनकी अवस्था के साथ ही उनकी यह दिनचर्या यहाँ देना मैंने उचित समझा है। •

ठक्करबापा मुझसे मिले। बातचीत के बाद यह तय हुआ कि हमारे स्टीमर सिन्ध के हरिजनों को आधे किराये पर देश में ले आयेंगे। लेकिन बाद में बापा का दूसरा पत्र मिला कि हमारे कराची के एजण्ट और वहाँ के नेता सेठ हरिदास लालजी के बीच यह तय हुआ था कि जो हरिजन किराया दे सकें उनसे पूरा किराया लेकर और जो न दे सकें उन्हें हम मुफ्त में लायें।

इस तरह हमारे दो स्टीमर कोई एक हजार हरिजनों को लेकर आये।

२२० एक बार गांधीजी २ अक्तूबर को दिल्ली में थे। मेरे मित्र जोशी साहब और दूसरे एक मित्र का बहुत आग्रह था कि गांधी-जयन्ती के उस दिन मैं उन्हें गांधीजी के पास ले जाऊँ। आखिर मैं राजी हुआ और उन्हें बिड़ला-हाउस ले गया। मैं गांधीजी की गादी के पास बैठकर उनके साथ गो-सेवा-संघ की बात कर रहा था इतने में लेडी माउण्टबेटन हाथों में फूल लेकर अपनी और अपने पति की तरफ से जन्म-दिन का अभिनन्दन करने बिना किसी पूर्व-सूचना के ही आ गयीं। उन्हें आते देखकर गांधीजी ने बहुत धीमे से सिर्फ यह कहा कि लेडी माउण्टबेटन आ रही हैं।

लेकिन मैंने अच्छी तरह सुना नहीं हालाँकि मैं उठकर खड़ा तो हो गया था और सामने की तरफ थोड़ी दूर पर, जहाँ मेरे दो मित्र बैठे थे, वहाँ उनके पास जाकर बैठ गया था। गांधीजी ने खड़े होकर लेडी माउण्टबेटन का स्वागत किया और उन्हें अपने साथ गादी पर बैठाकर उनसे बातें कीं। हम तीनों उसी कमरे में सामने की तरफ बैठे रहे। बाद में मुझे ख्याल आया कि लेडी माउण्टबेटन के आने पर गांधीजी ने धीमी आवाज से उन्हींका नाम लिया था।

सन्तरी ने बीड़ी सुलगायी !

२१ हमारी सिन्धिया कम्पनी की एक हवाई सर्विस थी। जीमी प्रेस उसका एक अमेरिकन पाइलट था और जुहू में मेरे घर के पीछे रहता था। सन् १९४७ का साल था और कश्मीर पर आक्रमण वाला मामला चल रहा था इसलिए भारत सरकार ने हमारे हवाई जहाज अपने उपयोग के लिए हमसे ले लिये थे। जीमी को दिल्ली कश्मीर के बीच अपने काम के सिलसिले में दिल्ली जाना था। मुझसे कहने लगा

'आप दिल्ली क्यों नहीं चलते ? चलिये जरूर चलिये।

"वैसे तो इस समय दिल्ली में मुझे कोई काम नहीं है लेकिन एक अरसा हुआ गांधीजी से मिला नहीं हूँ इसलिए मन ललचाता जरूर है।

मैं दिल्ली गया।

२२. ता २९ जनवरी गुरुवार के दिन जीमी के साथ मैं शाम की प्रार्थना मे सम्मिलित हुआ। शुक्रवार तारीख ३ को जीमी कश्मीर गया और मैं दोपहर को गांधीजी के पास बिड़ला-हाउस पहुँचा। गांधीजी नहाने की हरी दूबवाले मदान में धूप में लेटे हुए थे और बातचीत कर रहे थे। सामने की दीवार की तरफ कुछ बन्दूकधारी सिपाही पहरा दे रहे थे उनमें से एक ने अपनी बन्दूक पास की दीवार से टिकायी और बीड़ी सुलगायी ! पहरा देनेवाला सन्तरी बीड़ी नहीं पी सकता। मनुबहन गांधीजी के पास बैठी थी। मैंने उनका ध्यान इस ओर खींचा

ऐसे लोग गांधीजी की रक्षा क्या करेंगे ?

दिल्ली के मुसलमानों का डेपुटेशन मिलने आया था। गांधीजी उनसे कह रहे थे

आप इजाजत दें तो मैं १५ दिनों के लिए वर्धा हो आऊं। मुसलमानों ने 'हां' कहा। कुछ देर के बाद वे लोग चले गये।

२२३ मैंने देखा कि आज गांधीजी को थोड़ी फुरसत थी। इसलिए मैंने महादेव-ट्रस्ट की बात छेड़ने का विचार किया। महादेवभाई के स्मारक के सिलसिले में बम्बई-गुजरात में एक कोष इकट्ठा हुआ था जिसमें बम्बई को गुजरातवालों का साझीदार बनना पड़ा था। शर्त यह थी कि कोष की जो रकम इकट्ठी हो उसमें से पहले दस लाख रुपये गुजरातवालों को मिलें और दोनों के लिए गांधीजी अलग ट्रस्टी नियुक्त करें। गांधीजी ने बम्बई के लिए श्री वैकुण्ठलाल मेहता और श्री शान्तीभाई पटेल के साथ मुझे नियुक्त किया था।

दुर्भाग्य से २५ लाख रुपयों की अपेक्षित रकम इकट्ठी नहीं हो पायी और पहले १ लाख गुजरात को दे देने के बाद २ लाख की रकम बम्बई के हाथ में रही। कुछ मित्रों की इच्छा थी कि यह रकम भी गुजरात को भेजी जाय लेकिन ट्रस्ट के अनुसार रकम बम्बई के बाहर खर्च नहीं की जा सकती थी। मर्यादा यह थी कि वाची-पुस्तकालय गांधी-साहित्य महादेवभाई की जीवनी का प्रकाशन आदि कामों पर यह रकम बम्बई में ही खर्च की जाय। मैंने गांधीजी के सामने ये सारी कठिनाइयां रखीं और उनसे पूछा

हम सब मिल अपने भरसक सारे प्रयत्न कर रहे हैं लेकिन ट्रस्ट का काम रास्ते पर जम नहीं रहा है। क्या किया जाय?

गांधीजी 'इस ट्रस्ट के पैसे बम्बई में खर्च हों और मूल विचार के अनुसार बम्बई में उसका काम चले यही ठीक है। कठिनाइयां तो आयेंगी ही। तुम्हें वैकुण्ठभाई को और सब मित्रों

को मिलकर दूसरा कोई हल खोजना चाहिए। मैं तो इस दावानल में डूबा हुआ हूँ। फिर भी जितनी मदद सम्भव है उतनी मुझसे ले सकते हो।

किन्तु फिर वह अवसर मुझे मिला नहीं।

[बाद के वर्षों में बम्बई में पुस्तकालय चलाने लायक स्थान प्राप्त करने का बहुत प्रयत्न किया पर स्थान नहीं मिला। गांधी निधि ने मणि-भवन में जगह देने को कहा था लेकिन अन्त में वह भी नहीं मिली। अब यह तय हुआ है कि इस ट्रस्ट की रकम बम्बई विश्वविद्यालय को सौंप दी जाय।]

२२४ महादेवभाई की जीवनी लिखवाने के बारे में भी चर्चा हुई। यह बात लगभग तय हो चुकी थी कि जीवनी तैयार करने का काम स्वर्गीय चन्द्रशंकर शुक्ल को सौंपा जाय लेकिन उनकी शर्तें कड़ी थीं और उन्होंने समय भी पूरे तीन साल का मांगा था।

गांधीजी—चन्द्रशंकर की मांग अधिक मालूम होने पर भी उसे स्वीकार करना चाहिए। उनके जैसा जानकार और परिश्रमी चरित्र लेखक दूसरा कोई शायद ही मिले। तीन साल का समय भी देना चाहिए।

बाद में गांधीजी ने बंगाल के किसी प्रसिद्ध पुरुष के जीवन चरित्र से सम्बन्ध रखनेवाला एक दिलचस्प किस्सा यह सुनाया जिसका चरित्र लिखने में चार साल लगे थे। नाम भी बताया था। पर मैं उसे भूल गया हूँ।

दूसरी रचनाओं के प्रकाशन के सम्बन्ध में भी नवजीवन-ट्रस्ट की ओर से आशा प्रकट हुई थी। मैंने इस विषय की भी चर्चा की।

"तीसरी कठिनाई यह है कि आपकी फिलॉसफी, आपके लेख, पोथी-पुस्तकालय आदि के अलावा और किसी काम में रुपया खर्च करने की अनुकूलता हमारे ट्रस्ट में नहीं है, और 'नवजीवन' वाले हमको इस तरह की कोई चीज बम्बई में स्वतंत्र रूप से छापने की अनुमति देते नहीं हैं।"

गांधीजी: "मैं इसका रास्ता निकाल दूंगा।"

लेकिन दैव ने कुछ और ही सोच रखा था। जिस दिन गांधीजी के साथ मेरी यह बातचीत हुई उसी शाम प्रार्थना के समय बिड़ला-भवन के अहाते में प्रार्थना-भूमि पर ही गांधीजी की हत्या हुई।

२२५. इस १ तारीख की ही एक और घटना मेरी स्मृति में अंकित रह गयी है।

दिल्ली की हवाई सेना में एक पारसी अफसर थे। शराब बहुत पीते थे। संयम बिलकुल नहीं रख पाते थे। मुझसे कहने लगे:

"आप मुझे गांधीजी के पास ले चलिये। मैं मानता हूँ कि उनके हुक्म करने पर मेरी शराब छूट जायगी।"

"मैं आपको शाम की प्रार्थना के समय जरूर ले जाऊँगा और जब गांधीजी प्रार्थना-भूमि की ओर जाने के लिए निकलेंगे उस समय दो मिनट रास्ते में मुलाकात करवाकर हुक्म दिलवा दूंगा।"

निश्चय हुआ कि तीसरे पहर ४।। बजे मैं उनके घर पहुँचकर उन्हें प्रार्थना में ले जाऊँगा। इतनी बातचीत के बाद हम दोनों जुदा हुए।

तीसरे पहर ठीक समय पर मैं उन्हें लेने गया तो वे नशे में चूर थे। कहने लगे

लज्जा मालूम होती है !

आप तो बाहर मिल आये। अब दूसरी बार फिर कैसे मिला जायगा ?

"नहीं चलिये। मैं आपको लेने ही आया हूँ। इतना तय जो किया था !

"तो हवाई-दल की यह पोशाक उतारकर सिविल ड्रेस में चलूँ।
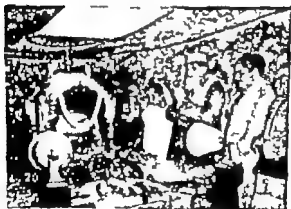
गांधीजी के निकट आपकी पोशाक बाधक नहीं होगी। जैसे हैं, वैसे ही चलिये। उन्हें कोई आपत्ति नहीं होगी।

लेकिन गांधीजी के समान महापुरुष को अपनी इसी छोटी और निजी बात के लिए क्यों परेशान करूँ ? मुझे माफ कीजिये। मैं पिये हुए हूँ। मुझे आपके साथ चलने में लज्जा मालूम होती है।

बहुत समझाने पर भी वे चलने को राजी नहीं हुए ●

२० :

हे राम !

हे राम !

२८६ शाम में प्रार्थना के लिए न जाकर मैं वहीं से सीधा अपने होटल पहुँचा और उस वैमानिक का ही विचार करता हुआ खिन्न मन से पलंग पर पड़ा रहा।

मेरे कमरे के सामने रेडियो बज रहा था। कुछ देर बजने के बाद अचानक बन्द हो गया। मैंने सोचा बिगड़ गया होगा। ५।। बजे मैं नीचे उतरा। वहाँ एक टैक्सीवाले ने कहा

महात्माजी चले गये !

भाई, रहने भी दो। ऐसी झूठी अफवाहें तो बार-बार उठा ही करती हैं।

जी नहीं, बात ऐसी नहीं है। देखिये न, ये सारे लोग बिड़ला हाउस की तरफ दौड़े जा रहे हैं।

मैं काँप उठा। बोला, मुझे ले चलो। जल्दी करो।

जाकर देखा तो बिड़ला-हाउस का फाटक बन्द मिला। बाहर ठठ-के-ठठ लोग खड़े थे। और साइकिलों के तो पहाड़ खड़े हो गये थे। बड़ी मुश्किल से मुझे अन्दर जाने का मौका मिला। पहुँचते ही मनुबहन ने हाथ से इशारा कर मुझे कहा

'बापू गये !'

२२७ रमणभाई ने, मैंने और ब्रजकिशनजी चांदीवाला ने मिलकर गांधीजी की देह को अन्तिम स्नान कराया। प्यारेलाल-जी ने भी मदद की।

ब्रजकिशनजी को छोड़ और किसीको मृत्यु के बाद की विधियों का अनुभव नहीं था। इस कारण मैंने और ब्रजकिशनजी ने ही सब-कुछ किया। देह को नहलाया, चन्दन का तिलक किया, तुलसी की माला पहनायी और बाहर लाकर सुलाया। लोगों की भीड़ का पार न था। सब बराबर दर्शनों की मांग कर रहे थे। इसलिए हम मृत देह को ऊपर छत पर ले गये। वहीं हमने जवाहरलालजी का प्रसिद्ध रेडियो भाषण सुना। सरदार पटेल भी गमसुम बैठे हुए थे।

२२८ दूसरे दिन श्मशान-यात्रा निकली। डॉ. जीवराज मेहता और कन्हैयालाल मुन्शी को दाह-संस्कार के स्थान का पता लगाने का काम सौंपा गया था। उन्होंने राजघाटवाली जगह पसन्द की थी। मैं अरथी के साथ ठेठ राजघाट के नाके तक पहुँच गया था, लेकिन फिर भीड़ में अलग पड़ गया। इस कारण दाह-संस्कार के स्थान पर पहुँच नहीं सका।

२२९ दिल्ली की इस श्मशान-यात्रा का एक चित्र मेरे हृदय पर सदा के लिए अंकित हो गया है। श्मशान-यात्रा चींटी की चाल से चल रही थी। उसी समय रास्ते के दोनों ओर की इमारतों में से एक इमारत की छत पर कोई अंग्रेज फौजी अधिकारी अपने पूरे यूनीफार्म में खड़ा था। जब गांधीजी की अरथी ठीक उसकी इमारत के सामने से होकर गुजरी तो उसने पूरे फौजी ढंग से अटेन्शन की हालत में खड़े रहकर अरथी को सलामी दी।

श्मशान-यात्रा से लौटते समय भी किसी की मोटर न मिलने से मैं पैदल ही वापस अपने ठिकाने पहुँचा।

अस्थियों को एक जुलूस के रूप में नगर के टाउनहॉल में ले जाया गया । मेरे बहुत मना करने पर भी राजासाहब ने आग्रह करके मुझे हाथ में कलश देकर मोटर में बैठाया और स्वयं जुलूस के साथ अन्त तक पैदल चले ।

मैं उसी दिन पोरबन्दर से लौटा । दिल्ली से प्रयाग के त्रिवेणी संगम में अस्थियों को विसर्जित करने के लिए रवाना होनेवाली स्पेशल ट्रेन मुझे पकड़नी थी ।

२१२ मैं हवाई जहाज से बम्बई के रास्ते दिल्ली पहुँचा । सारे नेता वहाँ उपस्थित थे । अस्थि-कलश फूल-मालाओं से सजाये गये एक डिब्बे में रखा गया था । सारा डिब्बा लोगों की भीड़ से फूलों से और फूल-मालाओं से ढँक गया था ।

रास्ते में भी हरएक स्टेशन पर ऐसी ही भीड़ मिली । लोग डिब्बे को फूलों से बेहिसाब भर देते थे और फिर हाथ फैलाकर प्रसादी के रूप में फूल माँगते थे । जिन स्टेशनों पर ट्रेन खड़ी नहीं होती थी उन पर भी स्पेशल ट्रेन के दर्शनों के लिए आये हुए लोगों की वैसी ही भीड़ खड़ी मिलती थी । रेलवे लाइन के नजदीक के गाँवों में भी लोगों के झुण्ड-के-झुण्ड खड़े मिलते थे ।

२१३ सबेरे इलाहाबाद में त्रिवेणी-संगम पर अस्थि-विसर्जन हुआ । अस्थि-कलशवाली नाव में जवाहरलालजी सहित देश के सभी बड़े नेता मौजूद थे । मैं दूसरी नाव में था । उन दिनों श्री जॉन मथाई रेलवे-मन्त्री थे । उन्होंने दिल्ली से ट्रेन के रवाना होते समय फूलों की एक बड़ी मात्रा अस्थि-कलश पर चढ़ायी थी जिसमें तिरंगे रेशमी कपड़े का एक बड़ा फूल टँका था । अस्थि-विसर्जन के बाद जब सारी फूल-मालाएँ त्रिवेणी-संगम में प्रवाहित की गयीं

तो मैंने वह रकमी फूल पानी पर से उठा लिया और उसे सहेज कर रखा ।

३५ श्री देवदासभाई ने अस्थियों का कुछ हिस्सा मुझे दिया था उस बहुमूल्य धन-भवन में मेरी दादी-माँ द्वारा बनवाये गये मन्दिर के अहाते में जहाँ मैंने गांधीजी कस्तूरबा और महादेवभाई की समाधियों के नमूने बनवाये हैं वहाँ तीनों नमूनों के नीचे एक-एक कलश में रखा है । थोड़ी भस्म भी अँगूठी में बन्द करवाकर उसके सिर पर 'हे राम !' और वर्तुल की एक ओर चि. शान्ति कुमार और दूसरी ओर 'बापू के आशीर्वाद' शब्द गांधीजी के हस्ताक्षरों में खुदवाये हैं ।

२३ गांधीजी की हत्या ने सारे देश में घर-घर आघात पहुँचाया । प्रत्येक परिवार ने इस तरह के दुःख का अनुभव किया मानो उसके सिर से अपने पिता का छत्र उठ गया हो ! विवाह-समारोहों के राग-रंग बाजे-गाजे रोशनी और सिनेमा-घर, नाटक-घर सब बन्द रहे । हजारों-लाखों लोगों ने एक-दूसरे को शोक-समवेदना के और आश्वासन के पत्र लिखे तथा सूतक पाला । विदेशों के लोगों ने इस देश के अपने भारतीय मित्रों और परिचितों को ऐसे शोक-सूचक और आश्वासनभरे पत्र भेजे कि वे स्वयं भी एक कुटुम्बी के नाते इस दुःख में हमारे साथ हैं ।

गांधीजी की मृत्यु से पहले सन् १९४६ में मैं इंग्लैण्ड अमरिका की यात्रा पर गया था । इस यात्रा के दिनों में मैं जहाँ जहाँ भी गया वहाँ-वहाँ अनेक लोगों ने मुझसे गांधीजी के बारे में और उनके सविनय अवज्ञा-आन्दोलन और सिद्धान्तों के बारे में चर्चाएँ भी कीं । इसी कारण अनगिनत लोगों के साथ मित्रता भी

 गांधीजी के

हो गयी थी। और यद्यपि उन बहुतों के साथ बाद में मेरा पत्र-व्यवहार आदि के निमित्त से कोई सम्बन्ध रहा नहीं था फिर भी गांधीजी की मृत्यु के बाद उनमें से बहुतेरे लोगों के समवेदना-सूचक पत्र मुझे मिले थे। मेरे शोक का अनुभव करके सबने बहुत ही भावभरे और ढाढ़स बँधानेवाले पत्र लिखे थे।

एक-दो लोगों ने तो लिखा कि जिस घड़ी गांधीजी की हत्या हुई उस घड़ी उन्होंने स्वयं समझ में न आ सकनेवाली एक तरह की बेचैनी का अनुभव किया था। कोलम्बो में एक सज्जन मेरे पड़ोस में रहता था। सिर्फ बातचीत का नाता था। पक्का गांधी-विरोधी। बाद में भी हमारे बीच कभी पत्र-व्यवहार नहीं हुआ। लेकिन उसने भी मुझे दिलासा देनेवाला एक बहुत सुन्दर पत्र लिखा था।

१६ गांधीजी की अन्तेवासिनी डा० सुशीला नैयर और श्री घनश्यामदासजी बिड़ला-जैसे उनके निकट के साथी बाहर गए हुए थे इसलिए वे अनुपस्थित रहे। जब कि कोई खास नाता न होते हुए भी उक्त अमेरिकन वैज्ञानिक जीमी सन की आकस्मिक मेहरबानी से मैं अनायास ही इस अन्तिम अवसर पर दिल्ली पहुँच गया। इस प्रकार जीमी सन ने मुझे जीवनभर के लिए अपना ऋणी बना लिया।

गांधीजी की हत्या के सिलसिले में एक बात हमेशा ही मेरे दिल में खटकती रही है। वर्षों से मेरे मन में बराबर यह आशंका बनी रहने लगी थी कि शाम की सार्वजनिक प्रार्थना के समय ही कभी कोई उन पर हमला करेगा और उनके प्राण लेगा। जिस शाम को हत्या हुई उस समय यदि उक्त [illegible] वैज्ञानिक पूर्वनिश्चय के

अनुसार प्रार्थना के समय गांधीजी से मिलने मेरे साथ आये होते तो प्रार्थना-स्थान की ओर जाते समय मैं हमेशा की अपनी रीति के अनुसार आगे-आगे चलता होता और प्रार्थना के समय भी सदा की तरह आँख खुली रखकर चारों तरफ ध्यान रखता हुआ उनके पीछे खड़ा रहता।

लेकिन विधि की योजना के आगे मनुष्य का बस ही कितना ?

फिर भी इस परिस्थिति का पछतावा और दुःख तो जीवनभर के लिए मेरे हृदय पर अंकित हो ही चुका है !

अन्य सस्मरण

•

[इस पुस्तक के आरम्भ में भी इस बात का उल्लेख कर चुका हूँ कि मेरे पिता स्वर्गीय श्री नरोत्तम मोरारजी के समय में हमारे घर देश के अनेक नेता आया-जाया और ठहरा करते थे। इन सबके कम-ज्यादा सम्पर्क और सहवास का सौभाग्य मुझे छोटी उम्र से ही मिला। बाद के समय में भी यह सिलसिला किसी हद तक जारी रहा। ऐसे कुछ संस्मरण यहाँ दिये जा रहे हैं।

—शान्तिकुमार]

दादाभाई नवरोजी

●

१ भारत के पितामह स्वर्गीय श्री दादाभाई नवरोजी अपनी वृद्धावस्था के अंतिम वर्षों में बम्बई के पास समुद्र-किनारे बसे वरसोवा गाँव में आकर रहे थे और वहाँ पूरी तरह निवृत्त-जीवन बिताते थे। वे मेरे पिताजी को अच्छी तरह पहचानते थे। सन् १९१६ में बम्बई युनिवर्सिटी ने उन्हें डॉक्टरेट (एल-एल. डी.) की सम्मान पूर्वक उपाधि अर्पण करने का गौरव लिया। उस समय बम्बई के तत्कालीन गवर्नर लॉर्ड विलिंग्डन ने युनिवर्सिटी के कुलपति के नाते दादाभाई को पत्र लिखकर प्रार्थना की थी कि यदि वे इस उपाधि को स्वीकार करने के लिए युनिवर्सिटी तक पधारने का कष्ट उठा सकें तो आम लोगों को लम्बे समय के बाद अनायास ही उनके दर्शनों का लाभ मिल सकेगा।

दादाभाई ने पिताजी को बुलवाया और कहा "यदि आप मुझ बम्बई ले चलें और वापस घर पहुँचा दें तो मैं जाऊँ।

"बहुत खुशी के साथ।"

निश्चित दिन पिताजी उन्हें बम्बई ले गये। मैं साथ में था। उस समय मेरी उम्र १६ साल की थी।

जाते समय मरीन लाइन्स के पास अपने एक पुराने परिचित के घर थोड़ी देर विश्राम के लिए रुके थे। विश्राम के इस समय में एक ग्रुप फोटो लिया गया था जिसमें एक नन्हें किशोर के रूप में मैं खड़ा हूँ।

उपाधि प्राप्त करके युनिवर्सिटी हॉल से वापस लौटते समय उनका एक जुलूस निकला। पेडर रोड पहुँचने पर हमारे शान्ति भवन में फिर विश्राम के लिए कुछ देर रुके और बाद में वेसावे के लिए निकल पड़े। इस अवसर पर मुझे भारत के इस पितामह का आशीर्वाद पाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था।

एक बार उन्होंने किसी काम के सिलसिले में मेरे पिताजी को अपने वेसावावाले बँगले पर मिलने के लिए बुलाया था। लेकिन योग कुछ ऐसा रहा कि उन्होंने पिताजी को जो समय दिया था किसी दूसरे कारण से उनके लिए वह समय बदलना जरूरी हो गया इस कारण पिताजी को व्यर्थ का चक्कर न काटना पड़े इसके लिए इतनी वृद्धावस्था में भी वे वेसावावाला अपना बँगले से स्वयं मारवाड़ तक गये और पिताजी को तार किया।

४ सितम्बर, १९२५ को उनका सौवाँ जन्म-दिन बम्बई के काउसजी जहाँगीर हॉल में मनाया गया था। गांधीजी उसमें उपस्थित रहे थे। इस अवसर पर मैं ही उन्हें वहाँ ले गया था। ●

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

२. गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर को मैंने पहले-पहल विलायत कैम्ब्रिज में देखा था। उनका कोई रिश्तेदार कैम्ब्रिज में विद्यार्थी था। वे उसीके पास आये थे। उस समय मैंने एक नया कैमेरा लिया था। उससे पहला फोटो मैंने गुरुदेव का लिया। मैं बिलकुल नौसिखुआ था, इसलिए फोटो बहुत अच्छा तो नहीं आया फिर भी अपनी भक्ति के कारण मैंने उसे आज तक सहेजकर रखा है। कैम्ब्रिज के एक फोटोग्राफर की दूकान से उन दिनों मैंने गुरुदेव का एक फोटो खरीदा था जो पिछले ४१ वर्षों से मेरे शयन-कक्ष में लगा हुआ है। गांधीजी का फोटो भी उसी जगह ही में है। दोनों फोटो इस तरह दीवार पर लटकाये गए हैं कि दिन में रात में जब भी मैं अपने सोने के कमरे में होऊँ वे मेरी आँखों के सामने रहें। इन दोनों छायाचित्रों के सम्बन्ध में अपना एक विचित्र अनुभव भी यहाँ दे रहा हूँ। मैं जब कभी सवेरे उठकर गांधीजी का फोटो देखता तो मेरा वह दिन परेशानियों में बीतता

दादाभाई ने पिताजी को बुलवाया और कहा "यदि आप मुझे बम्बई ले चलें और वापस घर पहुँचा दें तो मैं चलूँ।

"बहुत खुशी के साथ।

निश्चित दिन पिताजी उन्हें बम्बई ले गये। मैं साथ में था। उस समय मेरी उम्र १६ साल की थी।

जाते समय मरीन लाइन्स के पास अपने एक पुराने परिचित के घर थोड़ी देर विश्राम के लिए रुके थे। विश्राम के इस समय में एक ग्रूप फोटो लिया गया था जिसमें एक नन्हें किशोर के रूप में मैं खड़ा हूँ।

उपाधि प्राप्त करके युनिवर्सिटी हॉल से वापस लौटते समय उनका एक जुलूस निकला। पेडर रोड पहुँचने पर हमारे शान्ति भवन में फिर विश्राम के लिए कुछ देर रुके और बाद में वेसावे के लिए निकल पड़े। इस अवसर पर मुझे भारत के इस पितामह का आशीर्वाद पाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था।

एक बार उन्होंने किसी काम के सिलसिले में मेरे पिताजी को अपने वेसावावाले बँगले पर मिलने के लिए बुलाया था। लेकिन योग कुछ ऐसा रहा कि उन्होंने पिताजी को जो समय दिया था किसी दूसरे कारण से उनके लिए वह समय बदलना जरूरी हो गया। इस कारण पिताजी को व्यर्थ का चक्कर न खाना पड़े इसके लिए इतनी वृद्धावस्था में भी वे वेसावावाले अपने बँगले से स्वयं मारवण तक गये और पिताजी को तार किया।

४ सितम्बर १९२५ को उनका सौवाँ जन्म-दिन बम्बई के कावसजी जहाँगीर हॉल में मनाया गया था। गांधीजी उसमें उपस्थित रहे थे। इस अवसर पर मैं ही उन्हें वहाँ ले गया था। ●

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

२. गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर को मैंने पहले-पहल विलायत में कैम्ब्रिज में देखा था। उनका कोई रिश्तेदार कैम्ब्रिज में विद्यार्थी था। वे उसीके पास आये थे। उस समय मैंने एक नया कैमेरा खरीदा था। उससे पहला फोटो मैंने गुरुदेव का लिया। मैं बिलकुल ही नौसिखुआ था इसलिए फोटो बहुत अच्छा तो नहीं आया फिर भी अपनी भक्ति के कारण मैंने उसे आज तक सहेजकर रखा है।

कैम्ब्रिज के एक फोटोग्राफर की दुकान से उन दिनों मैंने गुरुदेव का एक फोटो खरीदा था जो पिछले ४१ वर्षों से मेरे शयन-कक्ष में लगा हुआ है। गांधीजी का फोटो भी उसकी बगल ही में है। ये दोनों फोटो इस तरह दीवार पर लटकाये गये हैं कि दिन में या रात में जब भी मैं अपने सोने के कमरे में होऊँ, वे मेरी आँखों के सामने रहें। इन दोनों छायाचित्रों के सम्बन्ध में अपना एक विचित्र अनुभव भी यहाँ दे रहा हूँ। मैं जब कभी सवेरे उठकर गांधीजी का फोटो देखता तो मेरा वह दिन परेशानियों में बीतता

और गुरुदेव को देखता तो सारा दिन आनन्द में बीतता। स्वर्गीय मनुलाल नानावटी कहा करते कि गुरुदेव राजर्षि हैं और गांधीजी त्यागर्षि हैं शायद इसीलिए ऐसा होता होगा।

जब सन् १९२४ में गांधीजी यरवदा-जेल में ६ साल की सजा काट रहे थे उस समय गुरुदेव ने मेरे नाम २६ जनवरी १९२४ के दिन जो जरूरी तार भेजा था वह आज भी मेरे संग्रह में है। यह तो स्पष्ट ही है कि उनका यह तार, तार द्वारा मँगवाये गये मेरे किसी संदेशे के जवाब में ही भेजा गया था। पर दुर्भाग्य से इस मूल तार के अलावा उस समय की परिस्थितियों की अथवा गांधीजी की रिहाई के लिए की गयी किसी तरह की कोशिशों की याद दिलानेवाला या उन पर प्रकाश डालनेवाला कोई दस्तावेज या कागज-पत्र इसके साथ नहीं है। इसलिए यह तार ही ज्यों का त्यों यहाँ दे रहा हूँ

Shanti Kumar Pedder Rd Bombay

I ask for release of Mahatmaji not because he suffers but because his suffering humiliates our Government.

Rabindranath Tagore

तार का हिन्दी भावार्थ

[शान्तिकुमार पेडर रोड बम्बई।

मैं महात्माजी के छुटकारे की माँग इसलिए नहीं कर रहा हूँ कि वे कष्ट उठा रहे हैं, बल्कि इसलिए कि उनका कष्ट उठाना सरकार का अपमान करता है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर]

यह तार बम्बई के 'बाम्बे क्रॉनिकल' में छपा था।

एक बार गुरुदेव अपने शान्ति-निकेतन के कला-भवन के लिए चन्दा इकट्ठा करने बम्बई पधारे थे। हमारे शान्ति भवन के सामने ही स्वर्गीय जहाँगीरजी पिटीट के घर ठहरे थे। उन दिनों गुरुदेव के 'मॉरिस' नामक एक पारसी मंत्री थे लेकिन गुरुदेव उन्हें 'मरीचि' कहकर बुलाते थे इसलिए वे इसी नाम से पहचाने जाते थे। चन्दा इकट्ठा करने के काम में मदद प्राप्त करने के लिए मैं उन्हें कई लोगों के पास ले गया। लगभग [illegible] लाख रुपये इकट्ठा हुए थे। इस काम के निमित्त से गुरुदेव ने हमारे सिन्धिया-हाउस में एक कार्यालय भी खोला था।

दूसरी बार जब सन् १९३६ में शान्ति-निकेतन के लिए चन्दा इकट्ठा करने आये तो वे अपने नाटक दिखाते थे और उनमें खुद भी अभिनय करते थे। गांधीजी को यह चीज खटकती थी कि पैसों के लिए गुरुदेव को इस तरह भटकना और परिश्रम करना पड़ता है। इसलिए उन्होंने चन्दा इकट्ठा करने की जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली। बम्बई में उगाही का काम मुझे सौंपा। मैंने कहा "मुझे कोई साथी दीजिये।" बोले "सरदार पटेल के लड़के डाह्याभाई को लो।" निश्चय हुआ कि बम्बई के बड़े उद्योगपतियों में से किसी से भी पाँच हजार से कम न लिये जायें।

मैंने कहा "हम छाप डालें। हमें कौन देगा? तब आपके ही हाथ से लीजिए। हम तो उन्हें आपके पास खींचकर ले आयेंगे।"

तदनुसार हम स्वर्गीय सर पुरुषोत्तमदास को और दूसरे बड़े उद्योगपतियों को प्रयत्नपूर्वक गांधीजी के पास ले आये। इनमें एक मारवाड़ी (सेठ) भी आये। बड़ी देर तक गांधीजी से बातें कीं। फिर उठकर उन्हें प्रणाम किया।

और गुरुदेव को देखता तो सारा दिन आनन्द में बीतता। स्वर्गीय चन्दूलाल माणावटी कहा करते कि गुरुदेव राजर्षि हैं और गांधीजी ब्रह्मर्षि हैं। शायद इसीलिए ऐसा होता होगा।

जब सन् १९२४ में गांधीजी यरवदा-जेल में ६ साल की सजा काट रहे थे उस समय गुरुदेव ने मेरे नाम २६ जनवरी १९२४ के दिन जो जरूरी तार भेजा था वह आज भी मेरे संग्रह में है। यह तो स्पष्ट ही है कि उनका यह तार तार द्वारा भेजवाये गये मेरे किसी संदेशे के जवाब में ही भेजा गया था। पर दुर्भाग्य से इस मूल तार के अलावा उस समय की परिस्थितियों की अथवा गांधीजी की रिहाई के लिए की गयी किसी तरह की कोशिशों की याद दिलानेवाला या उन पर प्रकाश डालनेवाला कोई दस्तावेज या कागज-पत्र इसके साथ नहीं है। इसलिए यह तार ही ज्यों का त्यों यहाँ दे रहा हूँ।

Shanti Kumar, Pedder Rd Bombay

I ask for release of Mahatmaji not because he suffers but because his suffering humiliates our Government.

Rabindranath Tagore

तार का हिन्दी भावार्थ

[शान्तिकुमार पेडर रोड बम्बई।

मैं महात्माजी के छुटकारे की माँग इसलिए नहीं कर रहा हूँ कि वे कष्ट उठा रहे हैं, बल्कि इसलिए कि उनका कष्ट उठाना सरकार को लज्जित करता है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर]

मेरे संग्रह में गुरुदेव का स्मरण करानेवाली नीचे लिखी चीजें और हैं : उनके हस्ताक्षरोंवाली 'गीताञ्जलि' की एक प्रति; उनके छपे हुए भाषण की एक प्रति जिस पर उन्होंने अपने हाथों मेरा नाम लिखा है; उनके हाथ के बने दो चित्र और सन् १९१८ में शान्ति-निकेतन की शाला के एक शिक्षक स्वर्गीय अजितकुमार चक्रवर्ती की मृत्यु के बाद उनकी विधवा को बँगला में लिखा उनके हाथ का आश्वासन-पत्र।

जब गुरुदेव कलकत्ता जाने के लिए रवाना हुए, तो मैं उन्हें विदा करने बोरीबन्दर पहुँचा था। जाकर देखा तो पता चला कि एक ही आइलैण्ड प्लेटफार्म पर कलकत्ता मेल के सामने खड़ी पूना मेल में वे गलती से बैठ गये थे। मैंने मरीचि से कहा :

"यह क्या किया? पूना मेल में क्यों बैठाया?"

मरीचिभाई घबराये। कहने लगे :

"गुरुदेव थके हुए हैं। अब इस समय उनके आराम में खलल डालूँगा तो वे परेशान होंगे।"

"लेकिन पूना पहुँचकर क्या करेंगे? वहाँ पहुँचने पर ज्यादा परेशान नहीं होंगे? ट्रेन के छूटने में थोड़ी ही देर है।"

फिर तो खुद मैंने ही जाकर गुरुदेव से कहा। उन्होंने जल्दी जल्दी में ट्रेन बदली। बोले :

"मरीचि हमेशा ऐसा ही गोलमाल करता रहता है!" ●

'आप यह क्या कर रहे हैं ?

आप महात्मा हैं । बहुत बड़े हैं ।

सारी फीस की ही कपाकप । पूरे पाँच रुपये भी नहीं दिये !

गुरुदेव के इस बार के बम्बई-वास के दिनों में मैं उनके बहुत निकट सम्पर्क में आया । उन्हें जगह-जगह से निमंत्रण मिला करते थे । मैं उन्हें वहाँ ले भी जाता था ।

एक बार सान्ताक्रूज की सारस्वत-कॉलोनी में उनके स्वागत का समारोह था । वहाँ पहुँचने के लिए मैं उन्हें लेकर निकला । उनको गाते हुए सुनना मुझे बहुत पसन्द था । या तो मरीचि ने उनसे इसके बारे में कुछ कहा होगा या कोई और बात होगी लेकिन रास्ते में जाते हुए उन्होंने मोटर में धीमे स्वर में गाना शुरू किया । मैं तो सुख-समाधि में ही पहुँच गया !

सान्ताक्रूज के समारोह के अन्त में 'वन्दे मातरम्' गाया गया । सब खड़े हो गये । लेकिन मैंने देखा कि गुरुदेव बैठे हुए हैं । मैंने उनसे कहा

राष्ट्रगीत गाया जायगा ।

चौंककर खड़े हो गये । उन्हें आश्चर्य हुआ । बहुत गलत राग में और अशुद्ध उच्चारणों के साथ राष्ट्रगीत गाया जा रहा था !

गुरुदेव की ऊँची दीवारवाली टोपी मुझे बहुत अच्छी लगती थी । एक बार उनके पुत्र रथीबाबू ने वैसी एक टोपी मुझे दी । काली थी । गुरुदेव को इसका पता चला । कहने लगे

'काली नहीं रथीन दो ।' और यों कहकर अपनी पहनी हुई टोपी ही उतारकर मुझे दे दी !

मैंने घर जाकर देखा तो टोपी के साथ गुरुदेव का एक बाल भी उसमें लगा मिला । इन दोनों चीजों को मैंने आज तक सँभाल कर रखा है ।

मेरे संग्रह में गुरुदेव का स्मरण करानेवाली और कितनी चीजें और हैं। उनके हस्ताक्षरोंवाली 'गीतांजलि' की एक प्रति, उनके छपे हुए भाषण की एक प्रति जिस पर उन्होंने अपने हाथों मेरा नाम लिखा है, उनके हाथ के बने दो चित्र और सन् १९१८ में शान्ति-निकेतन की शाला के एक शिक्षक स्वर्गीय अजितकुमार चक्रवर्ती की मृत्यु के बाद उनकी विधवा को बँगला में लिखा उनके हाथ का आश्वासन-पत्र।

जब गुरुदेव कलकत्ता जाने के लिए रवाना हुए, तो मैं उन्हें विदा करने बोरीबन्दर पहुँचा था। जाकर देखा तो पता चला कि एक ही प्लेटफार्म पर कलकत्ता मेल के सामने खड़ी पूना मेल में वे गलती से बैठ गये थे! मैंने मरीचि से कहा:

'यह क्या किया? पूना मेल में क्यों बैठाया?'

मरीचिभाई घबराये। कहने लगे:

"गुरुदेव थक गए हैं। अब इस समय उनके आराम में खलल डालना तो वे परेशान होंगे।"

"लेकिन पूना पहुँचकर क्या करेंगे? वहाँ पहुँचने पर ज्यादा परेशान नहीं होंगे? ट्रेन के छूटने में थोड़ी ही देर है।"

फिर तो मैंने ही जाकर गुरुदेव से कहा। उन्होंने जल्दी जल्दी में ट्रेन बदली। बोले:

'मरीचि हमेशा ऐसा ही गोलमाल करता रहता है!' ●

'आप यह क्या कर रहे हैं?

आप महात्मा हैं। बहुत बड़े हैं।

सारी चीज की ही लपालप। पूरे पाँच रुपये भी नहीं दिये।

गुरुदेव के इस बार के बम्बई-वास के दिनों में मैं उनके बहुत निकट सम्पर्क में आया। उन्हें जगह-जगह के निमंत्रण मिला करते थे। मैं उन्हें वहाँ ले भी जाता था।

एक बार सान्ताक्रूज की सारस्वत-कॉलोनी में उनके स्वागत का समारोह था। वहाँ पहुँचने के लिए मैं उन्हें लेकर निकला। उनको गाते हुए सुनना मुझे बहुत पसन्द था। या तो मरीचि ने उनसे इसके बारे में कुछ कहा होगा या कोई और बात होगी लेकिन रास्ते में जाते हुए उन्होंने मोटर में धीमे स्वर में गाना शुरू किया। मैं तो सुख-समाधि में ही पहुँच गया।

सान्ताक्रूज के समारोह के अन्त में 'वन्दे मातरम्' गाया गया। सब खड़े हो गये। लेकिन मैंने देखा कि गुरुदेव बैठे हुए हैं। मैंने उनसे कहा

राष्ट्रगीत गाया जायगा।

चौंककर खड़े हो गये। उन्हें आश्चर्य हुआ। बहुत मन्द राग में और मधुर उच्चारणों के साथ राष्ट्रगीत गाया जा रहा था।

गुरुदेव की ऊँची दीवारवाली टोपी मुझे बहुत अच्छी लगती थी। एक बार उनके पुत्र रथीबाबू ने वैसी एक टोपी मुझे दी। काली थी। गुरुदेव को इसका पता चला। कहने लगे

काली नहीं रथीन दो। और यों कहकर अपनी पहनी हुई टोपी ही उतारकर मुझे दे दी।

मैंने घर जाकर देखा तो टोपी के साथ गुरुदेव का एक बाल भी उसमें लगा मिला। इन दोनों चीजों को मैंने आज तक सँभालकर रखा है।

गोखलेजी

मेरे पिताजी राजनीतिक आन्दोलनों में आगे बढ़कर कोई खास हिस्सा नहीं लेते थे। लेकिन सार्वजनिक क्षेत्र में काम करने वाले देश के अनेक नेताओं के साथ उनका निकट का सम्बन्ध था। ऐसे लोग बम्बई आने पर अधिकतर हमारे ही घर ठहरा करते थे। पिताजी अपना नाम दिये बिना उनके कामों में भी यथासम्भव सहायता करते रहते थे। स्वर्गीय गोपाल कृष्ण गोखले की मेरे पिताजी के साथ बनी मित्रता थी। बम्बई आने पर गोखलेजी हमेशा पेडर रोडवाले हमारे 'शान्ति भवन' में ही ठहरते थे। गांधीजी के बारे में उनके बहुत ऊँचे खयाल थे और सब कोई जानते हैं कि गांधीजी भी उन्हें गुरुतुल्य मानते थे। गोखलेजी ने शुरू से ही गांधीजी को कह रखा था कि उन्हें अपने काम-काज के सिलसिले में किसी भी तरह की मदद की जरूरत हो तो वे मेरे पिताजी से मिल लिया करें। ऐसी एक घटना मुझे याद है। जिन दिनों गांधीजी ने साबरमती आश्रम की स्थापना की उन्हीं

जब पहले-पहल स्वर्गीय श्रीनिवास शास्त्री को सोसाइटी में लेने का प्रार्थना-पत्र आया उस समय गोखलेजी बम्बई में हमारे घर थे। और जब शास्त्रीजी मिलने आये तो गोखलेजी उनसे पहली बार हमारे 'शान्ति-भवन' के पीछेवाले बरामदे में मिले थे। बाद में शास्त्रीजी को सोसाइटी में प्रवेश देने के सिलसिले में गोखलेजी ने पिताजी के साथ परामर्श भी किया था।

इसके कुछ वर्षों बाद १५ मई, १९२५ के दिन शास्त्रीजी ने हमारे शान्ति-भवन के उस स्थान पर बैठकर, जहाँ गोखलेजी के साथ उनकी पहली भेंट हुई थी मेरी ऑटोग्राफ बुक में हस्ताक्षर करते हुए लिखा था

"This house is of great interest to me and I enjoy being here This is where Mr Gokhale met his friends on arrival from South Africa"

[इस घर में मुझे बड़ी दिलचस्पी है और यहाँ रहने में मैं आनन्द का अनुभव करता हूँ। यह वही जगह है जहाँ श्री गोखले दक्षिण अफ्रीका से आने के बाद अपने मित्रों से मिले थे।]

शान्ति भवन में बिलियर्ड का एक टेबल रहा करता था। एक बार उसके खेल में मेरे रामनीभाई ने गोखलेजी को पूरी तरह हरा दिया। इस पर उन्होंने कहा

बहुत सम्भव है आदमी नामी खिलाड़ी बन ही जाय लेकिन यह कोई बड़ी बात नहीं।—

इसके बाद उनका कोई महत्त्व नहीं थी जो मुझे याद नहीं रही।

शान्ति भवन के सामने श्री जहाँगीरजी पिटीट का बँगला था।

उनकी पत्नी श्रीमती जाइजी पिटीट गोखलेजी और गांधीजी की बड़ी प्रशंसक थीं। उन्होंने एक बार पिताजी से कहा

"एक बार गोखलेजी को मेरे घर नहीं ठहराइयेगा ?

पिताजी ने इसके लिए अपनी स्वीकृति दे दी। बाद में जब गोखलेजी बम्बई आये तो पिताजी ने उनसे बातचीत की और उन्हें जाइजीबहन के घर ठहराया। गोखलेजी वहाँ रहे।

वहाँ गोखलेजी को जिस कमरे में ठहराया गया था उसमें रात के समय उनके बंगले का नौकर बिछौना तो लगा गया लेकिन ओढ़ने के लिए कुछ रखना भूल गया। जाड़े के दिन थे। पिछली रात में गोखलेजी को ठण्ड लगने लगी। उठकर अँधेरे में सब कुछ टटोला लेकिन ओढ़ने लायक कुछ नहीं मिला। उनके कमरे की बगल में बिलियर्ड का टेबल रखा था। गोखलेजी ने उसकी खोल निकाल ली और उसे ओढ़कर सो गये। सबेरे उठकर खोल वापस बिलियर्ड की टेबल पर चढ़ा दी।

जाइजीबहन को इसका कोई पता नहीं चला। लेकिन गोखलेजी ने अपनी यह आपबीती पिताजी को सुना दी थी इसलिए अकेले उन्हींको पता था। बाद में एक बार जब किसी मौके पर पिताजी ने जाइजीबहन को यह बात विनोद में सुनायी तो वे बहुत ही शर्मिन्दा हुई थी।

सन् १९१२ में मेरे पिताजी पहले-पहल विलायत गये थे। उन दिनों गोखलेजी वहीं थे। मेरी दादी-माँ को इस बात की बड़ी फिक्र थी कि विलायत में पिताजी अपने धर्म का पालन किस हद तक कर सकेंगे। उनकी इस चिन्ता को दूर करने के लिए गोखलेजी ने उन्हें पूरी तरह आश्वस्त करनेवाला एक पत्र मराठी में लिखा था।

पूना के निकट बसे हुए सिंहगढ़ के डूंगरी किले पर हमारा एक बंगला था। गोखलेजी पिताजी के साथ वहाँ भी आया करते थे। वहीं मैंने उन्हें पिताजी के साथ कई बार ताश खेलते देखा था। ब्रिज खेलते थे। गोखलेजी की आदत यह थी कि जब तक पूरे पत्ते न आ जाते उन्हें एक छोड़ते। उठाकर देखते न थे। बाद में अपनी आँख चपचपाकर ही देखते। उनका विश्वास था कि ऐसा करने से पत्ते अच्छे निकलते हैं! उन दिनों मामूली ब्रिज खेला जाता था। तब ऑक्शन ब्रिज का चलन नहीं था।

सन् १९१५ में पूना में गोखलेजी का स्वर्गवास हो गया। उनकी मृत्यु का तार उसी रात हमारे घर पहुँचा था। मैंने पढ़ लिया लेकिन पिताजी को बताया नहीं। सवेरे ही उन्हें दिया। वे बहुत दुःखी हो गये। मुझ पर थोड़े नाराज भी हुए। कहने लगे मुझे उसी समय बता देना चाहिए था। बता दिया होता तो मैं रात ही मोटर से पूना जा सकता था। बाद में सवेरे ना वे मोटर से गये ही।

गोखलेजी ने अपनी एक वसीयत लिखी थी। उसके एक्जीक्यूटर के रूप में उन्होंने सर लल्लूभाई सामलदास और पिताजी को नियुक्त किया था।

सन्तान के नाते गोखलेजी के २ लड़कियाँ ही थीं। छोटी गोदावरी-बाई की मा सन् १९१ के इन्फ्लूएन्जा में गुजर गयी। बड़ी काशीबाई का विवाह फरवरी १९१९ में हुआ था। विवाह के बाद उनका नाम आनन्दीबाई रखा गया। गोखलेजी की मृत्यु के बाद भी आनन्दीबाई ने हमारे परिवार के साथ अपना सम्बन्ध बराबर बनाए रखा। मेरी दादी-माँ भी उन्हें बेटी की तरह ही रखतीं और बराबर उनकी सार-सँभाल भी करती थीं।

हमारे परिवार की 'व्यवहार-पोथी' में दो बातें लिखी मिलती हैं। एक है

"मि. गोखले की कन्या के विवाह के अवसर पर दिया गया गहना। (माल भ्यारा दिया है।) माघ बदी नवमी (सन् १९१९)।"

और दूसरी है

"मि. गोखले की लड़की के लड़के का मुंह देखकर बाली-माला दिये (सन् १९२)।

मेरे पिताजी की मृत्यु के बाद श्रीमती आनन्दीबाई गोखले ने अपने जीवन-काल में मेरे साथ का सम्बन्ध ज्यों का त्यों बनाये रखा था।

इस प्रकार श्री गोखलेजी के परिवार के साथ हमारे परिवार का सम्बन्ध ५ साल से भी अधिक लम्बे समय तक बना रहा। ●

श्री दीनशा वाछा

●

५ सर दीनशा एदलजी वाछा जब टाटा कम्पनी से अलग हुए तो मेरी दादी-माँ ने उन्हें फोर्टवाले हमारे कार्यालय में रख लिया था। कई वर्षों तक वे हमारे यहाँ काम करते रहे। लोग उन्हें 'वाछा सेठ' कहते थे। वे मिलों का काम-काज देखते थे। कार्यालय में उन्हें मेरे पिताजी के बराबरी के साथी का-सा पद प्राप्त था और वे चेकों पर सही भी करते थे। सन् १९११-१२ तक वे हमारी पेढ़ी में रहे।

लैण्ड रेवन्यू का और देश के दूसरे आर्थिक प्रश्नों का उनका अध्ययन गहरा था। पुराने समय में एक बार वे कांग्रेस के प्रेसिडेण्ट भी रह चुके थे। लेकिन बंग-भंग के बाद की राष्ट्रीय राजनीति और आन्दोलनों के वे कट्टर विरोधी थे। सन् १९१६ के बाद जब मैं व्यवसाय करने लगा तो काम-काज के सिलसिले में मुझे अक्सर उनके पास जाना पड़ता था। उस समय वे वर्तमान राजनीति की बहुत तीखी आलोचना और गरमागरम चर्चा किया करते थे।

श्री चन्दावरकर

●

५ जस्टिस सर नारायण चन्दावरकर जिन दिनों अपनी युवावस्था में बम्बई में कानून पढ़ रहे थे उन दिनों वे चौनाबाग के पीछे हमारी मोरारजी गोकुलदास की चाल में रहते थे। उसी समय से उन्होंने अपनी बुद्धि-शक्ति के कारण मेरे दादा मोरारजी गोकुलदास का ध्यान खींच लिया था। मोरारजी सेठ ने अपनी प्रौढ़ावस्था में कामचलाऊ अंग्रेजी काफी सीख ली थी। फिर भी जब वे उस समय की धारा-सभा में नियुक्त हुए, तो उन्हें नये-नये कानूनों के बिलों पर अंग्रेजी में भाषण करने पड़ते थे। अतः इन भाषणों के मसविदों को वे चन्दावरकर मास्टर से लिखवाकर और सुधरवा कर तैयार करते थे।

दादाजी की मृत्यु के बाद मेरी दादी-माँ ने उन्हें मेरे धरमसी काका के और पिताजी के शिक्षक (ट्यूटर-कम्पैनियन) के रूप में नियुक्त किया। उस समय से लेकर आगे कई वर्षों तक वे हमारे घर रहे और काकाजी तथा पिताजी पर उनकी शिक्षा, अनुशासन और समाज-सुधार-सम्बन्धी संस्कारों का गहरा प्रभाव पड़ा।

वे इन दोनों को सुबह-शाम हवाखोरी के लिए ले जाते।

उस समय दादाभाई, तैलंग आदि देश के नेताओं के साथ प्रतिदिन उनकी भेंट हुआ करती और देश के प्रस्तुत प्रश्नों के बारे में चर्चाएँ चला करतीं। इसके कारण दोनों पर बचपन से ही राष्ट्रीय भावना और देश-भक्ति के गहरे संस्कार पड़े। इस तरह मेरे पिताजी उन दिनों स्वर्गीय दादाभाई, गोखलेजी और सर फीरोजशाह मेहता के समान महान् पुरुषों के सम्पर्क में आये थे।

सर नारायण कई बरस तक हमारे परिवार के साथ बहुत निकट का सम्बन्ध बनाये रहे। हम उन्हें चन्दावरकर काका कहते थे। जब मैं विलायत पढ़ने गया तो उन्होंने अपनी जवानी की जेब में रखा पुराने आधे सोवर का चालीस साल पुराना सोने का एक सिक्का मुझे आशीर्वाद के रूप में बड़े प्रेम के साथ दिया था। वह आज भी मेरे पास है।

हमारे घर का काम छूटने के बाद वे दैनिक 'इन्दुप्रकाश' के सम्पादक बने, अग्रगण्य समाज-सुधारक और प्रार्थना-समाज तथा 'संसार-सुधार-परिषद्' के नेता बने और बम्बई हाईकोर्ट के न्याया-धीश के पद पर भी पहुँचे। वे उस समय की कांग्रेस के अध्यक्ष भी बने थे। इतना सब होने पर भी हमारे परिवार के साथ उनका घरोपा ज्यों का त्यों बना रहा। मांगलिक अवसरों पर और विशेष प्रसंगों पर वे धरमसी काका की तरह ही हमेशा मेरी दादी-माँ के पैर छूने पहुँचा करते थे।

पेडर रोडवाले हमारे शान्ति भवन के सामने ही कीर्ति-बाग में वे रहते थे। जब तक हम शान्ति भवन में रहे, उनकी पत्नी भी रात के ब्यालू (भोजन) के बाद दादी-माँ के पास बिला नागा आती रहती थीं और निश्चिन्त भाव से घण्टे-दो घण्टे बैठकर बात-चीत करती रहती थीं।

●

श्रीमती एनी बेसेण्ट

६ मेरे काका धरमसी सेठ और पिताजी दोनों पक्के थियो-सॉफिस्ट थे और श्रीमती बेसेण्ट को बहुत मानते थे। इस कारण श्रीमती बेसेण्ट जब बम्बई आती-जाती तो धरमसी काका के जीवन-काल में उनके बालाबाग में ठहरती थीं और बाद में हमारे घर शान्ति भवन में ठहरा करती थीं।

वे बहुत मितभाषी थीं। फर्श पर बैठकर और पलथी मारकर लिखा करती थीं। उन्हें लिखने के लिए हमने एक खास छोटे कद का डेस्क बनवाया था। वे बम्बई आती तो उनके साथ केवल उनका एक नौकर होता। सेक्रेटरी आदि दूसरा कोई नहीं।

वे अपना सारा काम स्वयं करती थीं। किसी किस्म की मांग जताती नहीं। कई बार तो हमें घर के अन्दर पता भी न चलता कि श्रीमती बेसेण्ट आयी हैं। पिताजी बम्बई में न होते, कहीं बाहर गये होते तो भी वे हमारे ही घर आकर ठहरती। जिन दिनों मैं विलायत गया था और हैरो में पढ़ने के लिए रहा था उन दिनों मेरे जिराद की पत्नी ने मुझसे कहा था कि श्रीमती बेसेण्ट के

अन्य

पिताजी किसी समय हीरो के विद्यालय में पादरी का काम करते थे और उन्होंने 'इस लड़की' को छोटी उम्र में गिरजाघर की बेंचों के सामने खड़े रहकर भाषण करने का अभ्यास करते हुए देखा था।

मेरी किशोरावस्था के दिनों में सारे हिन्दुस्तान में श्रीमती बेसेण्ट के नाम का बड़ा बोलबाला था। उन दिनों बहुतेरे बड़े-बड़े हिन्दुस्तानी थियॉसाफिस्ट बने थे और वे श्रीमती बेसेण्ट को इस देश में थियॉसाफी के क्षेत्र में सबसे बड़ा और राष्ट्रीय तथा हिन्दू-शिक्षा के क्षेत्र में अपने नेता के रूप में मानते थे।

वक्तृत्व-कला में सारी दुनिया के असामान्य वक्ताओं में उनकी गिनती होती थी और वैसी वे थीं भी। भाषण करते समय श्रोताओं पर पड़नेवाले प्रभाव को अपनी सूक्ष्म दृष्टि से देखा करती थीं और जब अनुभव करतीं कि सुननेवाले थक रहे हैं अथवा अस्थिर हो रहे हैं तो बड़ी कुशलता से अपनी हाथ-घड़ी देखकर भाषण समाप्त कर दिया करती थीं।

सन् १९१५ में बम्बई में कांग्रेस का एक विशेष अधिवेशन हुआ था। उसमें मैंने उन्हें भी सुना था। वे एक बार कांग्रेस की अध्यक्ष भी बनी थीं।

लोकमान्य तिलक के ६ साल की सजा भुगतकर आने के बाद सन् १९१६ में लखनऊ में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ था। इस कांग्रेस में लोकमान्य के नेतृत्व में काम करनेवाला गरम दल जो सूरत में हुए झगड़ों के बाद कांग्रेस से हट गया था फिर कांग्रेस में सम्मिलित किया गया और कांग्रेस ने मुसलमानों को भी विशेष अधिकार देने का वचन दिया। इस अधिवेशन के समय मेरे चचेरे भाई श्री रामजी ने लखनऊ में एक बँगला खास तौर पर किराये से लिया था जिसमें श्रीमती बेसेण्ट के अलावा श्री अरुण्डल श्री भूलाभाई देसाई

का परिवार और मेरे शिक्षक स्वर्गीय रणजीतराम बावाभाई आदि हमारे साथ रहते थे।

धरमसी काका पर, पिताजी पर और चचेरे भाई रतनसी पर श्रीमती बेसेण्ट का बहुत प्रभाव था। मेरे पिताजी की मृत्यु पर लिखी अपनी टिप्पणी में गांधीजी ने भी इसका जिक्र किया है।

श्री जमनादास द्वारकादास और मद्रास के सुप्रसिद्ध धाराशास्त्री (कानूनदाँ) श्री रामस्वामी अय्यर आदि जो होम रूल में विद्यार्थी के नाते श्रीमती बेसेण्ट के बहुत पक्के अनुयायियों के रूप में विख्यात हुए और नेता बने श्रीमती बेसेण्ट के साथ उनका पहला परिचय मेरे पिताजी ने ही कराया था। श्रीमती बेसेण्ट और कर्नल आल्काट के विरुद्ध कृष्णमूर्ति के नाम से जो मशहूर मुकदमा चला था उस समय भी एक बार श्रीमती बेसेण्ट बम्बई में हमारे घर आयी थी। उन्हीं दिनों उक्त केस में श्रीमती बेसेण्ट के विरुद्ध कृष्णमूर्ति के पिता की ओर से मुकदमा लड़नेवाले सी॰ पी॰ रामस्वामी अय्यर भी हमारे घर ही ठहरे थे। पिताजी ने ही दोनों को पहले-पहल एक-दूसरे से मिलाया था। इस घटना के बाद सर सी॰ पी॰ जीवनभर श्रीमती बेसेण्ट के कट्टर अनुयायी बनकर रहे। वे हमेशा कहा करते कि नरोत्तम सेठ के कारण उन्हें अपने जीवन का एक सबसे बहुमूल्य परिचय प्राप्त हुआ।

जब भी श्रीमती बेसेण्ट हमारे घर आतीं, तब शान्ति-भवन में अनेक थियोसॉफिस्टों का और दूसरे लोगों का आना-जाना बराबर बना रहता था। श्रीमती बेसेण्ट का अनेक सार्वजनिक सभाओं और सम्मेलनों आदि में जाना होता था। जब कोई उन्हें लिवाने नहीं आता तो वे हमारी मोटर में जाया करतीं। पिताजी शायद ही कभी उनके साथ सभा-सम्मेलनों में जाते थे। उनके जाने पर उन्हें

मिलाने के लिए और जाने पर विदा करने के लिए स्टेशन पहुँचा करते थे। अन्त-अन्त में रतनसीभाई ने पिताजी के सामने बड़े आग्रहपूर्वक अपना यह प्रस्ताव रखा था कि श्रीमती बेसेण्ट को उनके घर ठहरने दिया जाय। पिताजी ने उनकी यह माँग कबूल कर ली थी। इसलिए बाद में वे वहीं ठहरने लगी थीं। श्री कृष्णमूर्ति भी हमेशा उन्हींके घर ठहरा करते थे।

सन् १९१६-१७ में श्रीमती बेसेण्ट ने हिन्दुस्तान के राजनीतिक नेताओं के सहयोग से होमरूल का आन्दोलन चलाया। उस समय होमरूल लीग की स्थापना भी हमारे शान्ति-भवन में ही हुई थी। उन वर्षों में भी तिलक, जिन्ना, हॉर्निमन, बापट आदि अनेक राजनीतिक नेता हमारे घर आते रहते थे। उस समय मेरी उम्र १४-१५ साल की थी। मैं दूर एक कोने में खड़ा-खड़ा इन नेताओं को आते-जाते देखा करता था।

थियॉसॉफीवाले एक प्रकार के गूढ़ वाद में विश्वास करते हैं। उनकी मान्यता के अनुसार हिमालय के अगम्य प्रदेशों में अथवा तिब्बत में ऐसे कुछ महात्मा रहते हैं जो दुनिया की अमुक निश्चित प्रवृत्तियों में रुचि रखते हैं और उन्हें प्रेरणा तथा मार्ग-दर्शन देते रहते हैं। उन दिनों ऐसे मास्टरों (महात्माओं) के फोटो थियॉसॉफिस्टों में बाँटे जाते थे। मेरे पिताजी की पूजा में भी ऐसे दो फोटो (बन्द डिब्बे में) रहते थे और पिताजी रोज उन पर फूल चढ़ाते थे।

इस प्रकार के फोटोओं के बारे में परिपाटी यह थी कि जिनके पास वे होते उनकी मृत्यु के बाद उनके वंशजों को वे फोटो थियॉसॉफी के मुख्य केन्द्र को वापस लौटा देने होते थे। यदि वापस जाने का उत्तराधिकारी थियॉसॉफी के 'आउटर कोर्ट' (बाहर मण्डल)

का न हो तो वह न तो इन फोटुओं को रख सकता है और न बेच ही सकता है। अपने पिताजी की मृत्यु के बाद मैंने श्रीमती बेसेण्ट से प्रार्थना की कि वे इन दोनों फोटुओं को मेरे पास रहने दें। उन्होंने प्रार्थना स्वीकार कर ली।

इस प्रकार उक्त दोनों फोटुओं की पेटी मेरे पास ज्यों की त्यों रह सकी है और पिताजी के समय की तरह ही आज भी उस पर प्रतिदिन फूल चढ़ाये जाते हैं। ●

लोकमान्य तिलक

१ लोकमान्य तिलक को मैंने पहले-पहल एक बार सन् १९१५ में उस समय देखा था जब वे श्रीमती बेसण्ट से मिलने हमारे शान्ति-भवन आये थे और दूसरी बार उस वक्त देखा था जब हम सब गरमी की छुट्टियों में पूना के निकट सिंहगढ़ के किले पर अपने बँगले में चले गये थे। लोकमान्य के बम्बई के एक वकील मित्र श्री दाजी आबाजी खरे का बँगला भी गढ़ पर था। वहीं वे कभी-कभी आकर रहते थे। इसी तरह इस बार भी आये थे। रोज शाम को टहलने निकलते थे और उस समय हमारे बँगले के सामने खड़े रहकर हमें पुकारा करते थे। हम बड़े उत्साह से उनके साथ हो लेते थे।

लोकमान्य गणित और ज्योतिष के उद्भट विद्वान् थे। इसलिए रोज पश्चिमस्थित की बुर्ज के पास पहुँचकर दीवार पर से सूर्यास्त का दर्शन करते थे और अपनी घड़ी का समय मिला लेते थे। उस निर्जन किले पर घड़ी मिलाने का दूसरा कोई साधन था नहीं।

सन् १९२ की गरमियों में गांधीजी सिंहगढ़ आये थे और हमारे बंगले में ठहरे थे। उस समय लोकमान्य भी कुछ दिनों के लिए उनके साथ रहने की दृष्टि से खास तौर पर सिंहगढ़ आकर रहे थे। इन दो महान् देश-नेताओं के इस सिंहगढ़-सहवास का कार्यक्रम स्वामी आनन्द ने पिताजी से पूछकर खास तौर से बनाया था। उस समय मैं विलायत था।

लोकमान्य उसी साल स्वर्गवासी हुए। उनकी मृत्यु के समाचार मैंने विलायत से लौटते समय अपने जहाज पर फ्रांस के मार्सेल्स बन्दरगाह पर सुने थे। जिन दिनों मैं बम्बई पहुँचा वहाँ उनकी स्मशान-यात्रा की फिल्म दिखाई जा रही थी। पिताजी ने मुझे खास तौर पर उसे देखने को भेजा था। ●

पं० मालवीयजी

०

८. पं० मालवीयजी भी बम्बई आने पर प्रायः हमारे घर ठहरते थे। रोज सुबह-शाम पूजा-पाठ करते। पूजा के बाद १०-१५ मिनट कसरत भी कर लेते थे।

बनारस के हिन्दू विश्वविद्यालय को मेरे धरमसी काका और पिताजी के नाम से पचास हजार रुपयों की रकम दान में दी गयी थी। मुझे उस समय की एक-दो बातें याद हैं। काशी में हिन्दू विश्वविद्यालय की नींव रखने का समारोह हुआ था। उसके तुरन्त बाद वहीं मेरा उपनयन-संस्कार हुआ। सन् १९२ में मेरे विलायत से लौटने पर यह निश्चय हुआ कि विदेश-यात्रा का प्रायश्चित्त करने के लिए मुझे काशी जाना चाहिए। पिताजी ने सोचा कि अगर इस निमित्त से मेरी दादी-माँ मुझे लेकर काशी जायेंगी और विश्वविद्यालय देखेंगी तो उन्हें सन्तोष होगा। इस तरह दादी-माँ को समझाकर उन्होंने मुझे उनके साथ बनारस भेजा था। अहमदाबाद के प्रसिद्ध विद्वान् श्री आनन्दशंकर ध्रुव उन दिनों हिन्दू विश्वविद्यालय में थे। दादी-माँ को विश्वविद्यालय दिखाने का काम मालवीयजी ने उन्हीं को सौंपा था।

तदनुसार उन्होंने हमारे साथ चारों ओर घूमकर हमें विश्व-विद्यालय दिखाया था।

बाद के वर्षों में दादी-माँ ने मालवीयजी के सामने अपनी यह इच्छा प्रकट की थी कि विश्वविद्यालय को पचास हजार रुपयों का दान और दिया जाय। शर्त यह थी कि इस दान को पहलेवाले दान की रकम के साथ जोड़कर कुल दान एक लाख रुपये का माना जाय और विश्वविद्यालय में छात्रा कॉलेज को अथवा संस्था के ऐसे किसी भवन को 'मोरारजी गोकुलदास' का नाम दिया जाय। मालवीयजी का आग्रह यह था कि पहले वाले दान की बात न की जाय और नयी रकम ही एक लाख की दी जाय। यह योजना सफल नहीं हो सकी।

प्रायश्चित्त लेने की विधि के समय का एक किस्सा भी मुझे याद है। उपनयन-संस्कार के समय संस्कार करानेवाले शास्त्री ने मेरा मुण्डन करवाया था। इस बार भी उन्होंने कहा कि प्रायश्चित्त के निमित्त से मुझे मुण्डन कराना चाहिए।

'इसकी कोई जरूरत नहीं। बिना मुण्डन के ही सारी विधि करा दीजिये।

लेकिन कर्मकाण्डी राजी नहीं हुए। इतने में मालवीयजी आ पहुँचे। बोले

किस बात की चर्चा चल रही है?

शास्त्रीजी ने अपनी शिकायत पेश की। मालवीयजी ने मुझसे कहा शास्त्र की आज्ञा है कि मुण्डन कराना चाहिए। शास्त्र की आज्ञा माननी चाहिए। इसमें कौन बड़ी मुसीबत है? बाल तो आठ दिन में फिर उग ही आयेंगे न?

मैं मालवीयजी को महापुरुष के रूप में बहुत सम्मान और

आत्म

बाहर की दृष्टि से देखा करता था। उनकी बात रखने के लिए मैंने मुण्डन करा लिया।

उसी समय के काशी-वास की मालवीयजी से सम्बन्ध रखने वाली एक और स्मृति मुझे रह गयी है। ७० वर्ष की उम्र में तीसरी बार विवाह करनेवाले किन्हीं धनाढ्य भाटिया-सज्जन से हिन्दू विश्वविद्यालय के लिए एक खासी बड़ी रकम का दान मालवीयजी प्राप्त करना चाहते थे। वे सज्जन हद दर्जे के मूँजी (कंजूस) थे। मालवीयजी को बरसों खिलाया करते लेकिन दाद न देते। उन्होंने निश्चय किया कि इस काम के लिए वे मुझे साथ लेकर एक बार फिर उन सज्जन के घर जायें। तदनुसार वे मेरे साथ उनके मुकाम पर पहुँचे। इधर वे सज्जन किसी तरह पसीजते नहीं थे और उधर मालवीयजी उन्हें छोड़ते नहीं थे! यह रस्साकशी शाम के ६ बजे से लेकर रात के १॥ तक चलती रही। मालवीयजी उनसे चिपके ही रहे। आखिर मालवीयजी से पिण्ड छुड़ाने के विचार से ही उन सज्जन ने उन्हें कुछ रकम दी थी। कितनी दी थी सो याद नहीं।

यह तो जग-जाहिर है कि समय की पाबन्दी के मामले में मालवीयजी बहुत शिथिल थे। सभा-सम्मेलनों में हमेशा देर से पहुँचते। ट्रेन पकड़कर कहीं जाना होता तो घर के लोग घड़ी का काँटा एक घण्टा आगे बढ़ा दिया करते। सन् १९३१ की गोलमेज-परिषद् के समय इंग्लैण्ड के लिए रवाना हुए उस समय गांधीजी सहित सारे नेताओं के स्टीमर पर पहुँच जाने के बाद उनके कारण पी एण्ड ओ कम्पनी के मेल स्टीमर को बम्बई के बल्लार्ड पीयर के डॉक पर काफी समय तक रुकना पड़ गया था। ●

देशबन्धु दास

१. सन् १९२४ में श्री देशबन्धु दास पं. मोतीलालजी के साथ गांधीजी से स्वराज्य पार्टी की स्थापना के सिलसिले में चर्चा करने पूना आये थे। उसी समय मैं उनसे पहले-पहल मिला था। बंगाल के जूट और आसाम की चाय के व्यापार का एकाधिकार गोरों के हाथ में था। देशबन्धु ने उन दिनों एक ऐसी योजना तैयार की थी जिससे यह व्यापार देशवासियों के हाथ में आ सके। यह योजना बहुत बड़ी थी और इतनी विशाल कि उसके लिए करोड़ों की पूंजी लगती। उस समय एक दिन अपने कुछ बंगाली मित्रों को साथ लेकर वे पिताजी से और दूसरे धनिकों से इस विषय की चर्चा करने के लिए फोर्ट-स्थित गुडामा-हाउसवाले हमारे कार्यालय में आये थे।

मोतीलालजी नेहरू

●

१० पं० मोतीलालजी नेहरू मेरे पिताजी को बहुत अच्छी तरह पहचानते थे। इस कारण मैं भी उनके सम्पर्क में आ सका था। उनके प्रतापी व्यक्तित्व की बहुत गहरी छाप मेरे दिल पर पड़ गयी है। वहाँ धारा-सभा की बैठकों में सिंह की-सी चाल से चलकर वे अपनी जगह पर बैठा करते थे। ट्रेजरी बेंच (सरकारी पक्ष) के बड़े अंग्रेज-अधिकारी भी उनको बड़ी इज्जत की निगाह से देखते थे। वे उनसे डरते और उनका अदब रखते थे।

मेरे पिताजी की मृत्यु के अवसर पर उन्होंने मेरे नाम समवेदना का एक भावपूर्ण तार भेजा था। इसके बाद जब वे बम्बई आये और मैं सेंगटा-हाउस के पास के 'कच्छ-कैसल' में श्री [illegible] के घर उनसे मिलने गया उस समय वहाँ लोगों का एक बड़ा समुदाय मौजूद था। लेकिन वे मुझे देखते ही उठ खड़े हुए और पास के कमरे में ले जाकर तथा अपने पास बैठाकर बड़ी ही आत्मीयतापूर्वक मेरे कुशल-समाचार पूछे और कहा कि मुझे किसी काम की जरूरत हो तो मैं उन्हें बिना किसी संकोच के कहा करूँ। इसके बाद बहुत-बहुत आशीष देकर उन्होंने मुझे बिदा किया।

●

विट्ठलभाई पटेल

●

११ सन् १९२९ में विलायत से लौटते समय अपने 'कैसरे हिन्द' जहाज पर मैं पहले-पहल स्वर्गीय विट्ठलभाई पटेल से मिला था। वे किसी पार्लमेण्टरी कमीशन के सामने गवाही देकर हिन्दुस्तान वापस आ रहे थे। ह्विस्की पीते थे। रोज 'आमनिया ह्विस्की' के नाम से ह्विस्की मँगवाते और 'नारायण-नारायण' कहकर पीते रहते थे।

इसके कई वर्षों बाद जब वे दिल्ली की बड़ी धारा-सभा के स्पीकर बने तो जब-जब भी बड़ी धारा-सभा में भारतीय जहाजी व्यापार की चर्चा निकलती वे हमारी बहुत मदद करते। उन्हीं दिनों मैं उनके अधिक सम्पर्क में आया। वे धारा-सभा में कोई-न-कोई मुद्दा (इश्यू) खड़ा करके हर रोज सरकार को और अंग्रेज-अधिकारियों को आड़े हाथों लिया करते थे। मुझे यह बहुत अच्छा लगता था।

मेरे पिताजी की मृत्यु के अवसर पर वे बैठने आये थे और हमारे निवास-स्थान शान्ति-भवन से लेकर ठेठ महालक्ष्मी मन्दिर तक सबके साथ पैदल श्मशान गये थे। इस घटना ने मुझे बहुत प्रभावित किया था। ●

वल्लभभाई पटेल

१२. सरदार वल्लभभाई के साथ मेरा पहला परिचय उस समय हुआ जब वे मैसूर में गांधीजी के साथ थे। कस्तूरबा राजाजी और महादेवभाई के साथ वे भी हमारे घर भोजन के लिए आये थे। इसके बाद परिचय बढ़ता चला गया।

सन् १९३८ की हरिपुरा-कांग्रेस के अवसर पर उन्होंने नेताओं और प्रतिनिधियों के लिए तरह-तरह की खासी सुविधाएँ खड़ी की थीं। नेताओं के लिए विशिष्ट निवास बनाये गये थे और उनका एक अलग भोजनालय था जिसकी व्यवस्था स्वामी आनन्द के जिम्मे थी।

एक छोटे-से दल के मुख्य नेता बाद में पहुँचे। नेता-निवास में उनके लिए विशेष सुविधा करने की गुन्जाइश रही नहीं थी। इसलिए सरदार ने उनके ठहरने की व्यवस्था परिवार-निवासों में से एक निवास में करवा दी। उस नेता को लगा कि उनकी नेतागिरी को धक्का पहुँचाने के लिए जान-बूझकर ही उन्हें नेताओं के साथ रखा नहीं गया है! उन्होंने बहुत शोर मचाया!

इस सिलसिले में परस्पर कुछ सलाह-मशविरा करने के लिए सरदार और स्वामी आनन्द नेता-निवास और रसोई-घर के बीच के विशाल खुले मैदान में खड़े रहे। हमने देखा कि कोई सुन न सके इसी ख्याल से सरदार के दिमाग ने इस विशाल मैदानवाली जगह को अपने रोज-रोज के सलाह-मशविरे के लिए पसन्द किया था।

हम कुटुम्ब-निवास में रहते थे। सब कहीं जाने के प्रवेश-पत्र हमारे पास थे। सिर्फ बड़े भोजनालय के नहीं थे। क्योंकि हमारा अपना रसोई-घर अलग था। बड़े भोजनालय की व्यवस्था पूज्य रविशंकर महाराज और नानाभाई भट्ट के हाथ में थी। हमें वहाँ देखने जाना था। लेकिन उस जगह खड़े हुए वालन्टियर हमें अन्दर जाने नहीं देते थे। आखिर गांधीजी की कुटिया पर जाने का जो प्रवेश-पत्र मेरे पास था वह मैंने दिखाया। एक नन्हें वालन्टियर ने अपना दिमाग दौड़ाते हुए कहा

'यह पास तो सबसे बड़ा पास माना जायगा। इसलिए जो वहाँ जा सकता है, वह सब जगह जा सकता है। जाने दो!'

सरदार पटेल के पुत्र श्री डाह्याभाई की पहली पत्नी एक पुत्र छोड़कर चल बसी थी। इसके बाद जब दूसरी पत्नी के पहली सन्तान होने की खबर आयी तो महादेवभाई ने ट्रंक फोन से आये हुए समाचार गांधीजी को सुना दिये।

'कौन आया — लड़का या लड़की?'

'मैं यह पूछना तो बिलकुल भूल ही गया!'

'लड़की ही होनी चाहिए। लड़का होता तो पाटीदार आदमी चुप न बैठता।'

लड़की ही थी!

सिन्धिया कम्पनी के काम-काज में हमें जब कभी सलाह की अथवा मार्गदर्शन की आवश्यकता होती तो हम बिना किसी संकोच के उनके पास पहुँचा करते थे और वे हमारा मार्गदर्शन करते रहते थे। ब्रिटिश जहाजी व्यापार के अंग्रेज धन-कुबेरों के विरुद्ध भारतीय जहाजी व्यापार के हित में हमें वर्षों तक जो भारी संघर्ष करना पड़ा था उसमें वे हमेशा ही हमारे लिए आधार-स्तम्भ और दीप-स्तम्भ से बने रहे।

ब्रिटिश जहाजी व्यापार की विराट् पी० एण्ड ओ० कम्पनी भारतीय जहाजी व्यापार को अपनी मुट्ठी में रखकर चला करती थी। उसके ब्रिटिश इण्डिया ग्रुप की एक मोगल लाइन थी। यह मोगल लाइन हज के लिए जानेवाले मुसलमान यात्रियों को जेद्दा ले जाती और वहाँ से वापस लाती थी। उसके सम्बन्धी अधिकारी हाजियों को जहाज में भेड़-बकरी की तरह भरा करते थे और यात्रियों को दी जानेवाली मामूली-सी सुविधाओं के बारे में भी सरकारी आदेशों का अनादर करते थे। भारत-सरकार के इस विभाग में सर अकबर हैदरी के एक पुत्र उच्चाधिकारी थे। उन्होंने इस वस्तु के लिए जी-जान से कोशिश की कि स्टीमर पर हाजियों के लिए बनाये गये तंग पाखाने एक फुट और चौड़े कर दिये जायें। लेकिन कम्पनीवाले इस नन्ही-सी बात के लिए भी उन्हें दाद न देते थे।

आखिर उकताकर उन्होंने वालचन्द भाई से शिकायत की।

ब्रिटिश इण्डिया कम्पनी के साथ हमारा एक एग्रीमेण्ट है जिसमें हमारे स्टीमरों को जहाँ-जहाँ नहीं जाना चाहिए उनकी एक लम्बी सूची दी गयी है।"

सारी दुनिया के अधिकतर बन्दरगाह इस सूची में आ जाते

"यह भव्य और विशाल भवन जो २ वर्षों के साहसपूर्ण कार्यों के प्रतीक के रूप में आपके सामने खड़ा किया गया है, इसकी एक-एक ईंट और एक-एक पत्थर पर इतिहास अंकित है और भविष्य का इतिहास लिखा जानेवाला है।

●

थे। लेकिन हमने देखा कि उसमें हज लाइन का नाम नहीं है। किसी गलती से या पता नहीं कैसे यह नाम छूट गया था। हम तो नहीं चाहते थे। इसलिए हमने हज लाइन में पड़ने का निश्चय किया।

हमारे स्टीमर चलने लगे। एक-दो साल चले। लेकिन ब्रिटिश इण्डिया ने घातक स्पर्धा शुरू कर दी और हमको भारी नुकसान हुआ। अन्त में वालचन्द काका को लगा कि यह लाइन बन्द कर देनी चाहिए। सिन्धिया कम्पनी के उच्च अधिकारी श्री मनसुखलाल मास्टर, श्री शम्भुप्रसाद पंड्या और हम सब इस राय के थे कि यह हज लाइन बन्द नहीं की जानी चाहिए। आखिर यह निश्चय हुआ कि सरदार की सलाह ली जाय और वे जैसा निर्णय दें वैसा किया जाय।

सरदार ने वर्ली के समुद्र-तट पर टहलने जाने के अपने समय पर हम सबको इकट्ठा आकर बात करने का वक्त दिया। वालचन्द काका ने पहले से सारी बात कर ही रखी थी। हमारा मन्तव्य सुनने के बाद सरदार ने दो मिनट के अन्दर ही फैसला दिया कि सिन्धिया को हज लाइन चलाना छोड़ना नहीं चाहिए।

सरदार के साथ वालचन्द काका की बड़ी मित्रता थी। वे अक्सर काम के समय उनके साथ हवाखोरी के लिए भी निकला करते थे। वालचन्द काका कम्पनी के आद्य संस्थापकों में से एक थे और मेरे पिताजी भी कम्पनी के आद्य-स्तंभ थे।

कम्पनी का मुख्य कार्यालय बम्बई के बेलार्ड एस्टेट पर सुदामा हाउस में था। बाद में सिन्धिया-हाउस बना और २१ दिसम्बर, १९[illegible] के दिन सरदार के हाथों उसका उद्घाटन हुआ। इस अवसर पर सरदार ने जो विचार प्रकट किये थे

वल्लभभाई पटेल

"यह भव्य और विशाल भवन जो २ वर्षों के साहसपूर्ण कार्यों के प्रतीक के रूप में आपके सामने खड़ा किया गया है, इसकी एक-एक ईंट और एक-एक पत्थर पर इतिहास अंकित है और भविष्य का इतिहास लिखा जानेवाला है।

मौलाना आज़ाद

१९ हिन्दुस्तान से हज की ज़ियारत के लिए अरबस्तान जाने वाले मुसलमान यात्रियों को ले जानेवाले ब्रिटिश कम्पनी के स्टीमरों की तुलना में बहुत अधिक सुख-सुविधा देनेवाला और तेज़ रफ़्तार से जानेवाला 'जल-मदीना' नाम का जहाज़ जिन दिनों हमारी सिन्धिया कम्पनी ने तैयार करवाया और चालू किया उन्हीं दिनों बम्बई में कांग्रेस की कार्यकारिणी की एक बैठक हुई। निश्चय हुआ कि उसके सदस्यों को यह जहाज़ दिखाने के लिए ले जाया जाय। तीन-चार मोटरों में हम सबको डॉक पर ले गये। निश्चित समय पर मैं मौलाना साहब को मोटर में लेकर निकला। मौलाना साहब मराठी अच्छी तरह जानते-समझते थे लेकिन कभी बोलते नहीं थे। इधर मुझे अपनी टूटी-फूटी और ग़लत हिन्दुस्तानी में उनके साथ बातचीत करते हुए शर्म महसूस होती थी। इस वजह से गाम्भीर्य बिना एक शब्द बोले हम स्टीमर पर पहुँचे।

उस दिन स्टीमर पर ही नमाज़ का वक्त हो जाने से मौलाना साहब ने डेक पर ही नमाज़ अदा की थी। इंग्लैंड के एक मंत्री

की हैसियत से सर स्टेफर्ड क्रिप्स हिन्दुस्तान के साथ राजनीतिक वार्तालाप के लिए भारत आये थे। उस समय उन्होंने यहाँ के ब्रिटिश उद्योगपतियों से मिलना तो कबूल कर लिया लेकिन भारतीय उद्योगपतियों से मिलने के लिए समय के अभाव का अथवा ऐसा ही कोई बहाना बताया। उन दिनों मौलाना साहब कांग्रेस के सदर थे। मैंने उनका ध्यान इस ओर खींचा और लिखा कि यह अनुचित है। मौलाना साहब ने क्रिप्स के साथ पत्र-व्यवहार किया। उन्हें उधर से जो भी जवाब मिलते रहे उनकी जानकारी वे मुझे देते रहे। क्रिप्स ने यह कहकर बात टाल दी कि न मिलने का कारण अनिच्छा नहीं बल्कि समय की कमी है। ●

सरोजिनी नायडू

●

१५ श्रीमती सरोजिनी देवी को मैंने पहले-पहल बम्बई में सन् १९१२ की स्पेशल कांग्रेस के अवसर पर देखा था। उनका ठिगना कद बहुत सुडौल था और कण्ठ अत्यन्त मधुर। उनकी वक्तृता सुनकर श्रोतृ-समाज डोला करता था। वे 'भारत-कोकिला' अथवा 'बुलबुले हिन्द' कहलाती थीं।

बम्बई के मेरे एक निकट के मित्र दोस्तमुहम्मद जानमुहम्मद के साथ उनकी भी अच्छी पहचान थी। इस कारण मैं उनके अधिक सम्पर्क में आया और बाद में गांधीजी के कारण यह सम्पर्क और भी बढ़ा। वे स्वभाव से विनोदी और खाने-पीने की बड़ी शौकीन थीं। अधिकतर ताजमहल होटल में रहती थीं। कविता और कला की मर्मज्ञ थीं। उनकी अंग्रेजी कविताएँ छोटी उम्र में ही देश विदेश में सब कहीं पर्याप्त ख्याति प्राप्त कर चुकी थीं। बाद में वे राजनीति में अंश में आयीं और अन्त तक गांधीजी के साथ रहीं। वे गांधीजी के साथ आगा खान-महल के जेल में भी थीं। कुछ अर्से [illegible] आ गयी थीं।

वे बहुत वर्षों तक बम्बई कांग्रेस-कमेटी की अध्यक्ष भी रहीं। इसी तरह वे कांग्रेस की कार्यकारिणी की सदस्या भी रहीं। जब ऐसी कोई सभा-समिति होती थी तो ताजमहल में लोगों का खासा मजमा इकट्ठा हो जाया करता था। वे उनको और पत्रकारों को खूब खिलाती-पिलाती थीं। जब राजेन्द्रबाबू ने विशाखापट्टनम के हमारे शिप-यार्ड का उद्घाटन किया तो सरोजिनी देवी ने उस अवसर पर एक सुन्दर भाषण दिया था।

मेरे कई मित्रों की तरह वे भी मुझे 'मान्नि' कहकर बुलाया करती थीं। मुझे अपना भतीजा मानती थीं। बाद के वर्षों में जब हम सबने उन्हें 'बुआजी' कहना शुरू किया तो उसे उन्होंने बहुत पसन्द किया। वे अपने निकट के सब रिश्तेदारों पर वैसा ही प्रेम भाव रखती भी थीं। अन्त-अन्त में जब वे उत्तर प्रदेश की गवर्नर थीं तो उन्होंने मुझे निमंत्रण भेजा था कि मुझे कभी समय निकालकर उनके अतिथि के रूप में खास तौर पर लखनऊ पहुँचना चाहिए।

गवर्नर की हैसियत में ही उनका स्वर्गवास हुआ। दुर्भाग्यवश उनके मृत्यु-दिन तक मैं उनके पास पहुँच नहीं पाया!

मुहम्मदअली जिन्ना

१ कायदे-आजम मुहम्मदअली जिन्ना को भी मैंने सबसे पहले सन् १९१५ में देखा था। उस साल मैं अपने पिताजी के साथ ऊटी (उटकमण्ड) गया था। जिस ट्रेन में हम थे उसीसे जिन्नासाहब भी ऊटी जा रहे थे।

कुछ दिनों बाद ऊटी में एक वन-भोजन के अवसर पर हम फिर मिले थे। पिताजी के सुझाने पर उन्होंने मेरे साथ कच्छी में बातचीत की। मुझे आश्चर्य हुआ। उस समय तक मुझे यह कल्पना ही नहीं थी कि हमारे भाटिया समाज के अलावा दूसरे समाज के लोग भी कच्छी जानते हैं।

उसी साल के अन्त में बम्बई में कांग्रेस का एक विशेष अधिवेशन हुआ था। उस अधिवेशन में मैंने उनका भाषण सुना। भाषण के बीच उन्होंने किसी पुस्तक से कुछ वाक्य भी पढ़कर सुनाये थे।

बाद में जब श्रीमती बेसेण्ट हमारे घर आतीं तो उनसे मिलने ये अक्सर आया करते। एक बार जुहू में कोई जमीन खरीदने के [illegible] से मोटर [illegible] आये थे। उस वक्त भी वे हमारे बँगले पर

मुहम्मदअली जिन्ना

१८. कायदे-आज़म मुहम्मदअली जिन्ना को भी मैंने सबसे पहले सन् १९१२ में देखा था। उस साल मैं अपने पिताजी के साथ ऊटी (उटकमण्ड) गया था। जिस ट्रेन में हम थे उसीसे जिन्नासाहब भी ऊटी जा रहे थे।

कुछ दिनों बाद ऊटी में एक वन-भोजन के अवसर पर हम फिर मिले थे। पिताजी के बुलाने पर उन्होंने मेरे साथ कच्छी में बातचीत की। मुझे आश्चर्य हुआ। उस समय तक मुझे यह कल्पना ही नहीं थी कि हमारे भाटिया समाज के अलावा दूसरे समाज के लोग भी कच्छी बोलना जानते हैं।

उसी साल के अन्त में बम्बई में कांग्रेस का एक विशेष अधिवेशन हुआ था। उस अधिवेशन में मैंने उनका भाषण सुना। भाषण के बीच उन्होंने किसी पुस्तक के कुछ वाक्य भी पढ़कर सुनाये थे।

बाद में तो जब श्रीमती बेसेण्ट हमारे घर आतीं तो उनसे मिलने के अवसर आया करते। एक बार जुहू में कोई ज़मीन खरीदने के इरादे से मौका देखने आये थे। उस वक्त भी वे हमारे बँगले पर

में बहस कर रहे थे। उनकी बगल में दूसरे कोई बड़े वकील बैठे थे। उन्होंने कहा

'किसके सामने बहस कर रहे हैं? अपने को नाहक क्या थकाते हैं? जरा सामने तो देखिये। साहब तो सो रहे हैं! थोड़ी देर ठहर जाइये या फिर किताबें पछाड़िये तो वे जागेंगे!

जिन्नासाहब 'जागते हों तो भी कभी कुछ समझते तो हैं ही नहीं!'

एक बार बर्मा-इमिग्रेशन-बिल पर दिल्ली की बड़ी धारा-सभा में बहस होनेवाली थी। यह बिल भारतीय व्यापारियों के हितों के विरुद्ध था। उन्हें अपना पक्ष समझाकर और धन्धे के हिसाब से उनकी फीस देकर उनका लिखित अभिप्राय प्राप्त करने के लिए हम उनके पास गये। उन्होंने साफ इनकार कर दिया। कहा

बड़ी धारा-सभा में मुझे इस बिल पर बोलना पड़ेगा इसलिए वकील के धन्धे के हिसाब से मैं इसके बारे में अपनी राय नहीं दे सकूंगा। हाँ धारा-सभा के एक सदस्य के नाते आपका दृष्टिकोण अवश्य समझना चाहूँगा। अपनी बात मुझे समझा दीजिये।

सन् १९३१ में लन्दन में जो गोलमेज-परिषद् हुई थी उसमें ब्रिटिश व्यापार के हित में की जानेवाली व्यवस्था के प्रस्ताव का जिन्नासाहब ने बड़ा विरोध किया था। ●

परिशिष्ट

[समस्मरण संख्या १५, (पृष्ठ ९६) पर प्रकाशित पंढरपुर की विठ्ठल-मूर्ति के विषय में काकासाहब कालेलकर, विनोबाजी तथा केदारनाथजी के स्पष्टीकरण यहाँ दिये जा रहे हैं :]

१ इस सम्बन्ध में काकासाहब कालेलकर ने मुझे लिखा कि 'पुरुषोत्तम' शब्द उनका नहीं हो सकता। सम्भवतः मेरी स्मृति [illegible] गयी हो। इसका मुझे खेद है। पाठकों से प्रार्थना है कि वे 'पुरुषोत्तम' के बदले '[illegible]' शब्द पढ़ें।

काकासाहब ने अहमदाबाद से प्रकाशित 'संस्कृति' मासिक के अगस्त १९६४ के अंक में 'कमर पर हाथ किसलिए?' शीर्षक एक विस्तृत लेख भी लिखा है। उसका आवश्यक अंश यहाँ उद्धृत करता हूँ।

जब भक्त भवनदी पार करने के लिए भगवान् से मदद की याचना करते हैं, तब भक्तों की याचना सुनते ही एक क्षण का भी विलम्ब किये बिना सहायता करने के लिए तत्पर भगवान् सदैव कमर पर हाथ रखकर तैयार रहते हैं। मनुष्य प्रतीक्षा करते समय भी कमर पर हाथ रखता है और सहायता के लिए कसने की तैयारी के समय भी। ये दोनों भाव मुझे इष्ट लगते हैं। मैंने स्वयं सदैव पिछला अर्थ पसन्द किया है।

विनोबाजी ने अपने दिनांक ६-११-६६ के पत्र में इस प्रकार स्पष्टीकरण किया है :

पण्ढरीनाथ विठ्ठल कमर पर हाथ रखकर खड़े हैं। इसमें निहित भावार्थ के सम्बन्ध में आपने अपनी पुस्तक में कुछ चर्चा की है। शंकराचार्य ने विठोबा के दर्शन के बाद जो संस्कृत-स्तोत्र रचा, उसमें इसका अर्थ दिया है : 'प्रमाणं भवाब्धेरिदं मामकानाम्' अर्थात् भवसागर बहुत गहरा है, पर मेरे भक्तों के लिए वह गहरा नहीं, कमर तक ही है।